www.thearyasamaj.org

ओ३म्

आर्य जगत्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

रविवार, 18 अगस्त 2013 | आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का साप्ताहिक पत्र | सप्ताह रविवार 18 अगस्त, 2013 से 24 अगस्त 2013

श्रा. शु.–12 ● वि० सं०–2070 ● वर्ष 78, अंक 69, प्रत्येक मंगलवार को प्रकाश्य, दयानन्दाब्द 190 ● सृष्टि–संवत् 1,96,08,53,114 ● इस अंक का मूल्य – 2.00 रुपये

गुरु पूर्णिमा पर गोपीचन्द कॉलेज में नवसत्रारम्भ

आर्य जगत् व उससे सम्बद्ध महापुरुषों के संदेश पीढ़ी–दर–पीढ़ी लोगों के हृदयों में सम्प्रेषित होते रहें इसलिए आषाढ़ शुक्ला व्यास पूर्णिमा को प्रातः 11.00 बजे गोपीचन्द आर्य महिला कॉलेज अबोहर (पंजाब) में नवसत्रारम्भ के उपलक्ष्य में इस पावन दिवस की महत्ता को लक्षित कर भवय हवन–यज्ञ का आयोजन किया गया। क्योंकि इसी दिन वैदिक धर्म व आर्य संस्कृति के संवाहक ऋषि दयानन्द द्वारा गुरु विरजानन्द को गुरु दक्षिणा के रूप में लवंग के साथ–2 अपना सम्पूर्ण जीवन एक विराट् उद्देश्य के लिए समर्पित कर दिया था। हवन में मुख्य यजमान की भूमिका का निर्वहन प्राचार्या डॉ. नीलम अरूण मित्तु ने किया। यज्ञ में सभी छात्राओं, उपस्थित अभिभावकों व प्राध्यापकों ने श्रद्धा व उत्साहपूर्वक समवेत स्वरों में ईश्वर–स्तुति व वैदिक मंत्रोच्चारण के साथ प्रातः कालीन आहुतियाँ अग्निदेव को अर्पित की।प्राचार्या महोदया ने कॉलेज की उपलब्धियों व उत्कृष्ट परीक्षा परिणामों के संबंध में एक प्रतिवेदन प्रस्तुत किया तथा छात्राओं को अपने आशीर्वचनों से निरन्तर आगे ही आगे बढ़ते रहने की प्रेरणा देते हुए सबके सहयोग व स्नेह के लिए आभार व्यक्त किया। हवन के पश्चात् संगीत विभाग की ओर से मधुर भजन की प्रस्तुति दी गई। अंत में शान्ति पाठ, प्रसाद वितरण व जयघोष के साथ सभी को नवशिक्षण सत्र की सुखद शुभकामनाएं दी गईं।

स्वाधीनता दिवस के शुभ अवसर पर सभी पाठ्को को आर्य जगत् की ओर से हार्दिक शुभ कामनाऐं

–सम्पादक

डी.ए.वी. स्कूल, अबोहर में हुआ विज्ञान एवं श्रेष्ठता पुरस्कार समारोह

डी.ए.वी. मॉडल स्कूल, अबोहर में 'स्पिर्ट–13 द सांइस फैस्टीवल व एक्सलैंस आवार्ड समारोह' का विधिवत शुभारंभ प्राचार्य श्री एच.आर. गांधार व उनकी धर्मपतनी प्राचार्या श्रीमती सुदेश गांधार, डॉ. बी.बी.शर्मा, श्री देव मित्र आहूजा, प्राचार्य श्रीमती कुसुम खगर व स्थानीय प्रबंधक समिति के सदस्यों द्वारा अपने कर कमलों द्वारा दीप प्रज्ज्वलित कर किया गया। इससे मुख्यातिथि श्री एच.आर.गंधार जी द्वारा स्कूल ध्वज भी फहराया गया व विद्यार्थयों द्वारा डी.ए.वी. गान' का गायन किया गया।

डी.ए.वी. गान व ध्वजारोहण के बाद विद्यार्थियों द्वारा मधुर स्वागत गान प्रस्तुत किया गया। इस अवसर पर पंजाब राजय के करीब 50 शहरों के स्कूलों से लगभग एक हजार के करीब विद्यार्थी उपस्थित थे। रिसर्च वर्क को 'सांइस' क्वैस्ट' जनरल के रूप में रिलीज भी किया गया।

अपने सम्बोधन में श्री एच.आर.गंधार ने कहा कि शिक्षा की उन्नति समाज की भलाई के लिए होनी चाहिए तभी इसका उद्देश्य सार्थक हो सकता है। उन्होंने कहा कि रिसर्च वर्क पर जोर देना ही विद्यार्थियों में नए आयामों को जन्म देगा। श्री गांधार ने कहा कि अभिभावकगण आभार के पात्र हैं जिन्होंने डी.ए.वी. परिवार पर अपार विश्वास व्यक्त कर अपने बच्चों को शिक्षित करने हेतु इस परिवार का हिस्सा बनते हैं।

प्राचार्या श्रीमति कुसुम खुगर द्वारा सांइस फैस्टीवल की विस्तारक जानकारी दी और आए हुए प्राचार्यो, अध्यापकों तथा विद्यार्थियों का स्वागत किया। अतिथिगण बच्चों द्वारा प्रदर्शित किए गए मॉडल्स को देखकर अभिभूत थे।

डी.ए.वी. पटेलनगर (पश्चिमी) ने समझाया जल का महत्त्व

डी.ए.वी. स्कूल पश्चिमी पटेल नगर में पर्यावरण संरक्षण सप्ताह का आयोजन किया गया दौरान जल के महत्त्व को समझाने के लिए स्कूल के छात्र छात्राओं ने श्री मति पूर्णिमा विद्यार्थी, चेयरमैन, करोल बाग कमेटी, के नेतृत्व में पटेल नगर में एक रैली निकाली! यह पद यात्रा पटेल नगर स्कूल से होती हुई मुख्य बाजारों में गई। सब बच्चों के हाथों में 'जल ही जीवन है', 'जल की हर बूँद कीमती है', 'जल व्यर्थ में बर्बाद मत करो', 'पानी बचाओ' भविष्य सुरक्षित करो, आदि नारों के पोस्टर थे। अध्यापिकाएँ भी बच्चों के साथ–साथ चल रही थीं। बच्चों ने जल के महत्त्व को दर्शाते हुए पद–यात्रा रोक कर लोगो को नुक्कड़ नाटिका भी दिखाई तथा जल का महत्त्व समझाया। लोगों ने घरो। से झांक–झांक कर तथा पथिकों ने रुक कर बच्चों की बातों को ध्यान पूर्वक सुना तथा सराहा। सब बच्चों ने प्रण किया कि वे कभी भी पानी को बर्बाद नहीं करेंगे, उपयोग के बाद नल बंद कर देंगे, घर में भी सबको व्यर्थ में जल बर्बाद नही करने देंगे।

स्वजातीय या विजातीय ईश्वर अथवा अपने आत्मा में तत्त्वान्तर वस्तुओं से रहित एक होने से वह 'अद्वैत' है। – स. प्र. समु. १

संपादक – श्री पूनम सूरी

www.thearyasamaj.org

ओ३म्
आर्य जगत्
सप्ताह रविवार 18 अगस्त, 2013 से 24 अगस्त, 2013

त्रिविध पवित्रता

● डॉ. रामनाथ वेदालंकार

पत्रृतस्य गोपा न दभाय सुक्रतु:, त्रीष पवित्रा हृद्यन्तरा दधे।
विद्वान्त्स विश्वा भुवनाभि पश्यति, अवाजुष्टान् विध्यति कर्ते अव्रतान्।।

ऋग् ६.७३ .८ऋषि:

ऋषि: **पवित्र: आङ्गिरस:** । देवता **पवमान: सोम:** । छन्द: **जगती** ।

● (**ऋतस्य**) सत्य का, (**गोपा:**) रक्षक, (**सुक्रतु:**) शुभ प्रज्ञानों और शुभ कर्मों वाला (सोम प्रभु), (**दभाय न**) हिंसा या उपेक्षा किये जाने योग्य नहीं है।, (**स:**) वह, (**हृदि अन्त:**) हृदय के अंदर, (**त्री पवित्रा**) तीन पवित्रों को–विचार, वचन और कर्म की पवित्रताओं को, (**आ दधे**) स्थापित करता है।, (**विद्वान्**) विद्वान्, (**स:**) वह, (**विश्वा**) समस्त, (**भुवना**) भूतों को, (**अभि पश्यति**) देखता है, (**अजुष्टान्**) अप्रिय, (**अव्रतान्**) व्रत–हीनों को, (**कर्ते**) अंध कूप में, (**विध्यति**) धकेलता है।

● 'सोम' परमात्मा 'ऋत' का संरक्षक और अनृत का घर्षक है। जहाँ भी वह सत्य को पाता है, उसे प्रश्रय देता है। वह 'सुक्रतु' है, शुभ प्रज्ञानों, शुभ विचारों, शुभ संकल्पों और शुभ कर्मों से युक्त है और अपने सम्पर्क में आनेवाले मानवों को भी वैसा ही बनाना चाहता है। परन्तु मानव को सत्य पथ का पथिक तथा 'सुक्रतु' वह तभी बना सकता है, जब मानव उसकी शरण में जाए, उसे आत्म–समर्पण करे, उसे अपने हृदय–मन्दिर में उपास्य देव के रूप में प्रतिष्ठित करे। यदि मानव जीवन में उसकी हिंसा या उपेक्षा ही करता रहेगा, तो उससे मिलनेवाली 'सत्य' और 'शुभक्रतु' की प्रेरणा से वह वंचित ही रहेगा। अत: 'पावनकर्ता' सोमप्रभु किसी से कभी भी उपेक्षणीय नहीं है।

'सोम' प्रभु जब अपने उपासक को पवित्र करना चाहता है, तब उसके हृदय में तीन 'पवित्रों' को स्थापित कर देता है। वे तीन हैं विचार की पवित्रता, वाणी की पवित्रता और कर्म की पवित्रता। मनुष्य के विचार ही वाणी और कर्म के रूप में प्रतिफलित हुआ करते हैं, अत: वाणी और कर्मों को पवित्र बनाने के लिए सर्वप्रथम विचारों की पवित्रता आवश्यक है। यदि किसी मनुष्य के विचार अपवित्र हैं, मन में वह पाप–चिंतना करता रहता है, तो वाणी या कर्म से पाप न भी करे, तो भी वेद–शास्त्र उसे पापी कहते हैं। अत: प्रभु प्रथम अपने कृपापात्र मनुष्य से मन को पवित्र करता है, फिर उस पवित्रता को क्रमश: वाणी और कर्म में भी प्रतिमूर्त कर देता है। 'सोम प्रभु' विद्वान् है, वह प्रत्येक प्राणी की गतिविधि को सूक्ष्मता के साथ देखता है। उसकी आँख से कुछ भी नहीं छिपता। अपनी विवेक–चक्षु से साधु और असाधु की पहचान कर लेता है। साधुओं को सत्कर्म में प्रोत्साहित करता है। जो व्रतहीन हैं, किसी भी शुभ–कर्म के संकल्प से रहित हैं, अतएव जो दुर्वृत्त, अप्रिय और असेव्य हैं, उन्हें दुर्गति के अन्धकूप में धकेलता है, दण्डित करता है। आओ, हम 'पवमान सोम' को अपने जीवन की पतवार सौंपकर मन, वचन और कर्म से पवित्र बनें।

❑

वेद मंजरी से

इस अंक में प्रकाशित सभी लेखों में व्यक्त भावों व विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं और इसमें किसी आपत्तिजनक बात के लिए 'सम्पादक' एवं 'आर्य जगत्' उत्तरदायी नहीं होगा।

घोर घने जंगल में

● महात्मा आनन्द स्वामी

बात चल रही थी आत्मा परमात्मा की उसके मिलन की, जिसके आगे धन–सम्पत्ति व्यर्थ है स्वामी जी ने एक नगर में जुलूस की कथा सुनाई जिसमें एक सम्राट् अवतार माने जाने वाले एक तथाकथित गुरु अवतार माने जाने वाले के साथ चलने वाली भीड़ और अकेले चल रहे ईश्वर की बात कही। संसार को आत्म परमात्मा की नहीं क्षणिक सुख देने वाली वस्तुओं की आवश्यक्ता है। आत्मा--परमात्मा की बात करने वाले को लोग पागल समझने लगते हैं।

स्वामी जी ने लाहौर में प्रोफैसर दीवान चन्द के साथ पागलखाने में हुई घटना सुनाकर कहा; संसार की अवस्था ऐसी है कि यह वास्तविक स्रोत को भूल कर उलटे मार्ग पर बढ़ा जाता है। जो उस स्रोत (ईश्वर) की बात करता है संसार उसे पागल समझता है। परन्तु इस पागलपन में जो आनन्द है उसे कोई कैसे बताये। इसी आनन्द को लेकर उपनिषद ने कहा– **'रसो वैस:'**।

स्वामी जी ने कहा ज़मीन, जन और ज़र का फिसाद छोड़ो। सिकन्दर, तैमूर और चंगेज़ भी इसे साथ न ले जा सके। शान्ति का मार्ग है उस प्रियतम का दर्शन। इसके बिना यदि यह जीवन बीत गया तो महान् विनाश हो जायेगा। चौरासी लाख का चक्र फिर आरम्भ हो जायेगा उस प्रभु से प्रेम हो जाय तो तुलसी, 'गोस्वामी तुलसी दास' बन जाता है।

मार्ग बिल्कुल सीधा है– चित्तवृतियों का निरोध, अष्टांग योग, समाधि तक पहुंचो तो पाओगे कि तुम्हारा प्रभु प्रीतम तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है।

अब आगे.....

ओ३म् त्वं हि न: पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ।
अधा ते सुम्नमीमहे।।

विद्वानो, प्यारी माताओ तथा सज्जनो!

कल बृहदारण्यक उपनिषद् के पाँचवें अध्याय के पाँचवें ब्राह्मण पर विचार कर रहे थे। भू: भुव: स्व: की बात हम कह रहे थे। भू: सत्, भुव: चित्, स्व: आनन्द। परन्तु इन तीन शब्दों का क्या केवल यही अर्थ है? नहीं, एक और भी अर्थ है– भू: वह प्राण प्यारा, सर्वव्यापक, सबका स्वामी परमात्मा; भुव: दु:खों को दूर करने वाला; स्व: सुखों को देने वाला। परन्तु क्या केवल यही अर्थ है? नहीं, एक और अर्थ भी है। भू: अर्थात् विद्यमान है। परन्तु विद्यमान है तो फिर क्या हुआ? केवल विद्यमान ही रहता है? पत्थर की भाँति चुपचाप पड़ा रहता है? नहीं, भुव: हो रहा है और बढ़ रहा है, कर्मशील है। परन्तु यह सब–कुछ हो रहा है, आगे बढ़ रहा है और कर्मशील है, अन्तत: यह क्यों हो रहा है? इसका उत्तर है स्व:– आनन्द के लिए, सुख के लिए हो रहा है। भू: भुव: स्व:– है, हो रहा है, आनन्द के लिए हो रहा है इसी प्रकार अनादि काल से यह चक्र चलता रहा है।

बीज का उदाहरण देकर मैंने बताया था कि बीज कोंपल बनने के लिए, कोंपल पौदा बनने के लिए, पौदा वृक्ष बनने के लिए, वृक्ष फूल और फल बनने और फल बीज बनने तथा बीज पुन: कोंपल बनने के लिए बेचैन हो उठता है। प्रत्येक स्थान पर, प्रत्येक वस्तु में हर समय यही चक्र चल रहा है।

इस चक्र को चलाने वाला है सविता और भर्ग जिसका वर्णन गायत्री मन्त्र में आता है। इस अध्याय में चौदहवें ब्राह्मण में गायत्री–मन्त्र ही सुन्दर महिमा भी लिखी है। समय हुआ तो उसका थोड़ा–सा वर्णन करूँगा। परन्तु इस अध्याय में ब्राह्मण हैं पन्द्रह। अभी हम पहुँचे हैं पाँच तक। शेष हैं दस और दिन है केवल आज का। वह भी केवल साठ मिनट। उसमें से दस मिनट मन्त्री जी ने प्रोग्राम सुनाने में ले लिये हैं। शेष पचास मिनटों में दस ब्राह्मणों की व्याख्या करूँ तो प्रत्येक ब्राह्मण को पाँच मिनट मिलेंगे। पाँच मिनट में मैं कहूँगा क्या? आप सुनेंगे क्या? इसलिए जल्दी–जल्दी शेष बातें संक्षेप से आपके सामने रखूँगा। इस अध्याय में यह भी लिखा है कि शरीर को छोड़ने के पश्चात् यह आत्मा कहाँ–कहाँ जाता है और यह भी कि मृत्यु से पूर्व कौन–कौन–से चिह्न प्रकट हो जाते हैं जिनसे पता चलता है कि मृत्यु निकट आ गई है। हमारे पूर्वजों ने इस सम्बन्ध में कमाल किया। ध्यानावस्था की इस लेबॉरेटरी में जाकर इस शरीर की एक–एक नस, एक–एक नाड़ी को गिन

www.thearyasamaj.org

डाला और गिनकर देखा कि इस शरीर में बहत्तर करोड़, बहत्तर लाख, दस सहस्र, दो सौ एक नाडियाँ है। ये सब–की–सब नाडियाँ दिन–रात काम कर रही हैं। इतना बड़ा कारखाना चलता हो तो उस से आवाज़ उत्पन्न होना तो स्वाभाविक है। इसलिए अभी कानों में अँगुलियाँ देकर देखिये तो अन्दर से धूँ–धूँ या शाँ–शाँ की आवाज–सी सुनाई देगी। कभी–कभी ऐसा प्रतीत होगा कि कोई पहाड़ी नदी चट्टानों से गिर रही है। कभी–कभी गड़–गड़ और खट–खट की आवाज भी सुनाई देगी। कभी ऐसी भी जैसे ढोल बजता हो, बादल गर्जता हो, दमामे बजते हों, कई बार नई तरह की सुरीली और मीठी ध्वनियाँ भी सुनाई देंगी। ये सब–की–सब इस चलते हुए कारखाने की आवाजें हैं। बृहदारण्यक उपनिषद् के ऋषि कहते हैं कि प्रतिदिन प्रातःकाल कानों में अँगुलियाँ देकर इस आवाज़ को सुनिये। प्रातःकाल नहीं तो दोपहर, सायं अथवा रात्रि के समय–किसी भी समय सुनिये। यदि यह ध्वनि आती है तो ठीक, चिन्ता की आवश्यकता नहीं, मृत्यु अभी दूर है। परन्तु यह ध्वनि सुनाई नहीं देती तो समझिये कि तीन दिन के भीतर 'राम नाम सत्' होने वाला है। अधिक–से–अधिक तीन दिन और जीना है आपको। उसके पश्चात् समाप्त।

यह एक विधि है। दूसरी यह कि प्रातः उठकर उदय होते हुए सूर्य को देखिये। सूर्य के साथ उसकी किरणें भी आपको दिखाई देती हैं तो ठीक है। जाओ अपना काम आरंभ करो, अभी आपको इस संसार से जाना नहीं है; पर्याप्त समय शेष है। परन्तु यदि किरणें दिखाई नहीं देतीं, सूर्य एक थाल की भाँति दिखाई देता है तो समझो कि एक सप्ताह में इस संसार से चले जाना है। तब बाँधो बिस्तर, करो चलने की तैयारी। सप्ताह का जो दिन आज निकला जाता है वह आपके लिए पुनः नहीं आयेगा। ये दो चिह्न बताये हैं उपनिषद् के ऋषि ने।

फिर दसवें ब्राह्मण में यह भी बताया है कि मरने के पश्चात् आत्मा की क्या गति होती है, कहाँ–कहाँ वह जाता है। दसवाँ ब्राह्मण कहता है–

यदा वै पुरुषोऽस्माँल्लोकात्प्रेति स वायुमागच्छति।।

'जब यह पुरुष, यह आत्मा इस लोक से जाता है तो सबसे पूर्व वायुलोक में प्रविष्ट होता है।' धुएँ के साथ, धूल के साथ अथवा आँधी के साथ वह ऊपर उठकर पृथिवी के चहुँ ओर छाये उस स्थान पर पहुँचता है जहाँ अति सूक्ष्म वायु रहती है। इस वायु में साधारण व्यक्ति साँस नही ले सकता। पृथिवी का कोई प्राणी वहाँ पहुँचकर जीवित नहीं रह सकता। वायुयान भी इस वायुलोक के निचले भाग में पहुँचते हैं तो उन्हें भी अपने आपको Pressurise करना पड़ता है– कृत्रिम वायु उत्पन्न कर उसमें साँस लेना पड़ता है। ऐसा न किया जाये तो वायुयान में बैठे यात्रियों का या तो हार्ट फेल हो जायेगा अन्यथा वे सब के सब बेहोश हो जायेंगे। परन्तु यह इस वायुलयायेकय यके निचले भाग की अवस्था है। इससे ऊपर का भाग और भी सूक्ष्म होता है। इसमें वायु–यान के लिए उड़ना भी असम्भव हो जाएगा क्योंकि जैसी वायु में वह उड़ सकता है वैसी वायु वह है नहीं। इससे भी ऊपर पहुँचकर यह वायु और अधिक सूक्ष्म हो जाती है। वायु वहाँ विद्यमान रहती है परन्तु अधिक भाग आकाश का होता है। यह वह स्थान है जहाँ पहुँचकर पृथिवी की आकर्षण–शक्ति पृथिवीवालों के लिए समाप्त हो जाती है। यहाँ से यह आत्मा जैसे रथ के पहिये का छिद्र होता है उतने–से स्थान से ऊपर उठता है–

तेन स ऊर्ध्व आक्रमते स आदित्यमागच्छति।

'यहाँ से वह ऊपर निकलता है और आदित्यलोक में पहुँचता है।' परन्तु आदित्यलोक का अर्थ वह सूर्य नहीं जिसे हम प्रतिदिन देखते हैं। यदि उपनिषद् के ऋषि का तात्पर्य इस सूर्य से होता तो वह आदित्यलोक के स्थान पर सूर्यलोक शब्द का प्रयोग करते। आदित्यलोक का अर्थ वह महासौरमण्डल है जिसमें हमारा सूर्य चहुँ ओर घूमनेवाले ग्रहों और सारे आकाश के साथ लगातार दौड़ता चला जाता है। वर्तमान विज्ञान के अनुसार इस महासूर्यमण्डल में डेढ अरब सूर्यमण्डल घूम रहे हैं। इन डेढ़ अरब सौरमण्डलों का लोक ही आदित्यलोक है जहाँ वायुलोक से ऊपर उठा हुआ आत्मा पहुँचता है। परन्तु वहाँ भी वह रुक नहीं जाता; वहाँ से भी ऊपर उठता है–

तेन स ऊर्ध्व आक्रमते स चन्द्रमसमागच्छति।

'यहाँ से वह ऊपर निकलता है और चन्द्रलोक में पहुँचता है।' अब स्पष्ट है कि जिस चन्द्रलोक में यह आत्मा आदित्यलोक से ऊपर उठकर पहुँचता है, वह उस चन्द्रमा का नाम नहीं जिसे हम आकाश में घटता और बढ़ता हुआ देखते हैं। यह तो पृथिवी के बहुत निकट है; वायुलोक के बहुत निकट। इसमें आदित्यलोक के पश्चात् या वहाँ से ऊपर उठकर पहुँचने का कोई अर्थ नहीं। स्पष्ट है कि यह चन्द्रलोक इस महासौरमण्डल से बाहर कोई स्थान है, परन्तु यहाँ भी यह ठहरता नहीं, यहाँ से भी आगे बढ़ता है–

तेन स ऊर्ध्व आक्रमते स लोकमागच्छति अशोकमहिमं।

तस्मिन् वसति शाश्वतीः समाः।।

'वहाँ से वह ऊपर उठता है और उस लोक मे पहुँचता है जहाँ शोक, दुःख, कष्ट, क्लेश, कुछ भी नहीं। जहाँ बर्फ नहीं, वहाँ रहता है। अनन्त वर्षों तक वहीं निवास करता है।

यह स्थान कहाँ है? कैसे आत्मा वहाँ पहुँचता है? वह सब लम्बी कहानी है। कभी समय मिला तो सुनाऊँगा। आज यह सब–कुछ बताने का समय नहीं। आज केवल उन चिह्नों को स्मरण रखिये जो मरने से पूर्व प्रकट होते हैं। अब आगे चलिये!

आगे एक ब्राह्मण आता है जिसमें लिखा है कि प्राण ब्रह्म है। अन्न भी ब्रह्म है। पहले एक ब्रह्म से छुटकारा नहीं था, अब दो हो गये। परन्तु इसका अर्थ क्या है? अन्न ब्रह्म है, और प्राण ब्रह्म है। ये दोनों बातें तो सत्य नहीं हो सकतीं। या तो दोनों अशुद्ध हैं, नहीं तो एक निश्चित ही अशुद्ध है। उपनिषद् का ऋषि इनका उत्तर देते हुए कहता है–

अन्नं ब्रह्मेत्येक आहुस्तन्न तथा।

'कुछ लोग अन्न को ब्रह्म कहते हैं परन्तु यह बात ठीक नहीं।' किसी ने पूछा, क्यों ठीक नहीं? ऋषि ने उत्तर दिया– अन्न शरीर को दिया जाता है। शरीर में डाला जाता है। शरीर में यदि प्राण न हों तो–

पूयति वा अन्नमृते प्राणात्।

'बिना प्राण के शरीर में अन्न सड़ने लगता है।' इसका अर्थ यह हुआ कि प्राण बड़ा है। प्राण ही ब्रह्म है। क्या यह बात सच है? उपनिषद् का ऋषि कहता है–

प्राणो ब्रह्मेत्येक आहुस्तन्न तथा, शुष्यति वै प्राण ऋतेन्नात्।

'प्राण ब्रह्म है, ऐसा कुछ लोग कहते हैं; परन्तु यह बात भी अशुद्ध है क्योंकि अन्न के बिना प्राण सूखने लगते हैं।'

तब यह तमाशा क्या हुआ? पहले कहा, अन्न ब्रह्म है। फिर कह दिया दोनों बातें अशुद्ध हैं। तब ठीक क्या है? ये दोनों बातें अशुद्ध हैं, यह तो हम शास्त्र अथवा दलील के बिना भी जानते हैं। पिछले दिनों तीन सज्जनों ने भूख–हड़ताल की थी न?– यहाँ दिल्ली में स्वामी रामेश्वरानन्द जी ने, वहाँ अमृतसर में मास्टर तारासिंह जी और स्वामी सूर्यदेव जी ने। इनकी जो अवस्था हुई वह आपने समाचारपत्रों में पढ़ी। मैंने भी एक बार 21 दिन की भूख–हड़ताल की थी योगमार्ग पर चलते हुए। मेरे गुरु मद्रास प्रान्त के एक महात्मा थे। हठयोग के बड़े विशेषज्ञ थे। ऋषिकेश से आगे गरुड़ चट्टी में वे रहते थे। उन्होंने 21 दिन तक मुझे केवल पानी पर रखा और मेरी जो अवस्था हुई वह तो मैं ही जानता हूँ। शीशा लेकर अपनी शक्ल देखता तो ऐसा प्रतीत होता कि शीशे में खुशहालचन्द नहीं, और कोई देख रहा है। अन्न के बिना वस्तुतः प्राण सूख जाते हैं। जो छिप–छिपकर खाते रहें और केवल दिखावे के लिए हड़ताल करें उनके प्राण नहीं सूखते; परन्तु जो वस्तुतः अन्न का त्याग कर दे उसका शरीर बहुत दिनों तक तो रह नहीं सकता। प्राण भी रह नहीं सकता। प्राण रहता है शरीर में। शरीर बना है अन्न से। इसको अन्न न मिले तो प्राण रहेगा कहाँ? अन्न के बिना प्राण कुछ नहीं। इसी प्रकार प्राण के बिना अन्न भी कुछ नहीं। प्राण शरीर में रहे तो पेट में जठराग्नि जलती है। इसमें पहुँचकर अन्न पकता है; उसका रस बनता है। रस से रक्त बनता है। रक्त से चर्बी बनती है। चर्बी से हड्डी बनती है। हड्डी से वीर्य बनता है। वीर्य से ओज बनता है। मनुष्य के मुख पर दमक, आँखों में चमक, माथे पर ज्योति जगमगाने लगती है, परन्तु यह सब–कुछ होता है उस समय जब जठराग्नि और वैश्वानर अग्नि काम करें; और ये अग्नि काम करती हैं उस समय जब शरीर में प्राण विद्यमान हों। यदि शरीर में प्राण न हों तो यह अग्नि समाप्त हो जाती है। फिर इस

शेष पृष्ठ 9 पर ☞

राष्ट्रीय प्रार्थना

ओ३म् आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम्।
आ राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायताम्।
दोग्ध्री धेनुर्वोढाऽनड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः
सभेयो युवाऽस्य यजमानस्य वीरो जायताम्।
निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो नऽ ओषधयःपच्यन्तां
योगक्षेमो नः कल्पताम्॥

यजु. २२/२२

भावार्थ

ब्रह्मन्! स्वराष्ट्र में हों, द्विज ब्रह्म तेजधारी,
क्षत्रिय महारथी हों, अरिदल विनाशकारी।
होवें दुधारु गौएं, पशु अश्व आशुवाही,
आधार राष्ट्र की हों नारी सुभग सदा ही।
बलवान् सभ्य योद्धा, यजमान–पुत्र होवें,
इच्छानुसार वर्षें, पर्जन्य ताप धोवें।
फल–फूल से लदी हों, औषध अमोघ सारी,
हों योग–क्षेमकारी, स्वाधीनता हमारी।

ईश्वर मूर्ति में भी व्यापक - विद्यमान है

● भावेश मेरजा

आर्य जगत' साप्ताहिक के 7 जुलाई 2013 के अंक में स्वामी सौम्यानन्द जी (महर्षि दयानन्द भवन, 3/5 आसफ अली रोड, नई दिल्ली) का लेख **"भतीजे के प्रश्न ताऊ के उत्तर"** प्रकाशित हुआ है। उसमें लेखक ने जो मूर्तिपूजा का खण्डन किया है यह तो उचित एवं स्तुत्य कार्य ही है। मगर साथ-साथ में उन्होंने ईश्वर की सर्वव्यापकता को लेकर जो वैदिक सिद्धांत विरुद्ध बातें लिखी हैं, वे वास्तव में अनुचित हैं। 'भतीजे' का समाधान करने में पाठकों को भ्रम में डालने वाली बातें उन्होंन अपने इस लेख में लिखी हैं। सौम्यानन्द जी ने लिखा है कि -''मूर्ति में भगवान नहीं होते।" लेखक ने अपना विचित्र तर्क प्रस्तुत करते हुए आगे लिखा है- "जिसमें वह (भगवान्) स्थित होते हैं वह चेतन हो जाता है।"

अतः हमने पत्र तथा ई-मेल के माध्यम से सौम्यानन्द जी को सूचित किया कि उनकी ये बातें तो नितान्त सिद्धान्त विरुद्ध हैं। वास्तविकता यह है कि ईश्वर समस्त जीवों में एवं समस्त सृष्टि में अर्थात् समस्त जड़-चेतन में व्यापक रूप से एकरस विद्यमान हैं। इसमें **"ईशा वास्यमिदं सर्वम्"**, **''स पर्यगात्"** तथा **"स ओतः प्रोतश्च विभुः प्रजासु"** (यजु. 40.1., 40.8, 32.8) आदि अनेक वेद मन्त्र प्रमाण हैं। ऋषि दयानन्द ने अपने सत्यार्थ प्रकाश आदि ग्रन्थों में इसी सिद्धान्त का कथन किया है कि ईश्वर समस्त जड़ पदार्थों तथा चेतन जीवात्माओं में अखण्ड एकरस व्यापक है। अतः वह मूर्ति आदि पदार्थों में भी व्यापक है।

सम्भवतः लेखक को इस बात का निश्चयात्मक ज्ञान नहीं है कि इस संसार में दो चेतन पदार्थ हैं- ईश्वर और जीवात्मा। और एक जड़ पदार्थ है -'मूल प्रकृति' अथवा उसमें से बना हुआ सम्पूर्ण प्राकृतिक जगत्। ईश्वर तो जड़ पदार्थ में भी व्यापक है, मगर इससे वह जड़ पदार्थ चेतन नहीं हो जाता। जड़ पदार्थ तीनों कालों में जड़ ही रहता है। ईश्वर का चैतन्य गुण जड़ पदार्थ को चेतन नहीं कर सकता है। व्यापक और व्याप्य पदार्थ की स्वाभाविक भिन्नता तो बनी रहती है। "व्यापक पदार्थ चेतन है, इसलिए व्याप्य जड़ पदार्थ भी चेतन हो जाए" - ऐसा नहीं होता है। आर्य समाज के संन्यासी को इतनी समझ तो होनी चाहिए, ऐसी हमारी अपेक्षा रहती है। अन्यथा सैद्धान्तिक बातों को लेकर पाठकों को भ्रमित करने से स्वयं को बचाना ही ठीक है।

हमारे पत्रों के उत्तर में वेदानुकूल सत्य बात को स्वीकार करने की बात तो दूर रही, सौम्यानन्द जी ने पुनः अपनी वही भ्रामक बातें ही दोहराते हुए हमें लिखा कि -

मूर्ति में भगवान् होता तो मूर्ति चेतन क्यों नहीं होती? मूर्ति में भगवान् मानने से मृत शरीर में भी भगवान् मानना पड़ेगा, तब क्या आप भगवान् का दाह संस्कार करते हैं? मृत शरीर में से जीव के साथ परमात्मा भी निकल जाता है, मात्र पृथिवी तत्व शेष बचते हैं। अतः भगवान् केवल चेतन जीवात्मा के भीतर और जड़ के बाहर स्थित होता है। मूर्ति के अन्दर ईश्वर व्यापक नहीं होता है। मूर्ति के बाहर आकाशवत् विद्यमान होकर वहां हो रहे क्रियाकलापों को देखता है। परमात्मा आकाश के सदृश सब जगत् में व्यापक है, परन्तु ठोस जड़ वस्तु में आकाश (रिक्त स्थान) नहीं होता अतः भगवान् भी उसमें नहीं रह सकता। परन्तु उसके चारों ओर आकाश के समान व्यापक रूप से रहता है। सौम्यानन्द जी का यह भी कहना है कि सत्यार्थ प्रकाश के एकादश समुल्लास में "जब परमेश्वर व्यापक है तो मूर्ति में भी है?" - इस प्रश्न के उत्तर में महर्षि दयानन्द ने जो कुछ लिखा है इसका तात्पर्य यह निकलता है कि ईश्वर मूर्ति, पुष्प, पत्र, घण्टा, घड़ियाल, चन्दन, धूप आदि जड़ पदार्थों में विद्यमान नहीं होता है, इत्यादि।

इस आलोच्य विषय पर हमने महर्षि जी के सत्यार्थ प्रकाश आदि के कई प्रमाण सौम्यानन्द जी की सेवा में प्रस्तुत किये, मगर प्रतीत होता है कि वे सत्य सिद्धान्त को मान्य करने के लिए उद्यत नहीं हैं। उन्हें अपनी निराधार, प्रमाणशून्य, कल्पित बातें ही सत्य लगती हैं।

ईश्वर जड़ एवं चेतन सकल पदार्थों में एकरस व्यापक - विद्यमान है, यह प्रतिपादित करने के लिए हमने जिन बातों एवं प्रमाणों को उद्धृ किया वे निम्न हैं-

1. ऋषि दयानन्द का यह स्पष्ट मन्तव्य है कि ईश्वर मूर्ति आदि जड़ पदार्थों में भी व्यापक रूप से विद्यमान होता है। अर्थात् मूर्ति आदि में भी ईश्वर का अभाव नहीं होता है। जैसे कि - (क) सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम समुल्लास में विष्णु नाम की व्याख्या में ऋषि ने लिखा है - "चर और अचर रूप जगत् में व्यापक होने से परमात्मा का नाम विष्णु है।" (ख) अन्तर्यामी नाम की व्याख्या में ऋषि ने लिखा है - "जो सब प्राणी अप्राणीरूप जगत् के भीतर व्यापक होके सब का नियम करता है, इसलिए उस परमेश्वर का नाम अन्तर्यामी है।" (ग) वसु नाम की व्याख्या में ऋषि ने लिखा है - "जिसमें सब आकाशादि भूत बसते हैं और जो सब में वास कर रहा है, इसलिए उस परमेश्वर का नाम वसु है।" (घ) पुरुष नाम की व्याख्या में ऋषि ने लिखा है - "जो सब जगत् में पूर्ण हो रहा है, इसलिए उस परमेश्वर का नाम पुरुष है।'' (च) कुबेर नाम की व्याख्या में लिखा है - "जो अपनी व्याप्ति से सबका आच्छादन करे, इससे उस परमेश्वर का नाम कुबेर है।" ऐसे ही इसी समुल्लास में "विश्व" नाम की व्याख्या भी द्रष्टव्य है।

2. अष्टम समुल्लास में लिखा है - "जब वह (परमात्मा) प्रकृति से भी सूक्ष्म और उसमें व्यापक है, तभी उनको पकड़कर जगदाकार कर देता है।" उसी समुल्लास में फिर लिखा है - "वैसे ही व्यापक ब्रह्म ने अपने भीतर व्याप्त प्रकृति और परमाणु कारण से स्थूल जगत् को बनाकर बाहर स्थूल रूप कर आप उसी में व्यापक होके साक्षीभूत आनन्द हो रहा है।"

3. सप्तम समुल्लास में **"स पर्यगात्"** (यजु. 40.8) का अर्थ ऋषि ने - "वह परमात्मा सब में व्यापक" किया है। उसी समुल्लास में फिर लिखा है - "वैसे ब्रह्म के व्यापक होने से जीव और पृथिवी आदि द्रव्य उससे अलग नहीं रहते और स्वरूप से एक भी नहीं होते। ...इसी प्रकार जीव तथा सब संसार के पदार्थ परमेश्वर में व्याप्य होने से परमात्मा से तीनों कालों में भिन्न, और स्वरूप भिन्न होने से एक कभी नहीं होते।" ऋषि ने उसी समुल्लास में यह भी लिखा है कि - "वह सर्वव्यापक होने से कंस, रावणादि के शरीरों में भी परिपूर्ण हो रहा है।" जैसे उन मूर्त शरीरों में परिपूर्ण था, वैसे मूर्ति आदि पदार्थों में भी व्यापक - परिपूर्ण हो रहा है।

4. एकादश समु. में **"न तस्य प्रतिमा अस्ति"** मन्त्र के अर्थ में ऋषि ने लिखा है - "जो सब जगत् में व्यापक है उस निराकार परमात्मा की ..." इसी समुल्लास में फिर ईश्वर के बारे में लिखा हैं - "जो अचल अदृश्य, जिस के बिना एक परमाणु भी खाली नहीं है...।"

5. **"ईशा वास्यमिदं सर्वम्"** (यजुर्वेद 40.1) मन्त्र के वेद भाष्य भावार्थ में ऋषि ने लिखा है - "यह जगत् ईश्वर से व्याप्त, और सर्वत्र ईश्वर विद्यमान है।" सत्यार्थ प्रकाश के सप्तम समुल्लास में इसी मन्त्र के अर्थ में लिखा है - "जो कुछ इस संसार में जगत् है, उस सब में व्याप्त होकर जो उसका नियन्ता है, वह ईश्वर कहाता है।" मूर्ति भी तो जगत् का ही हिस्सा है, जगत् अन्तर्गत ही है। अतः उसमें भी ईश्वर व्यापक है।

6. **"स पर्यगात्"** (यजु. 40.8) मन्त्र की व्याख्या ऋ.भा. भूमिका के वेदानां नित्यत्व विचार प्रकरण में ऋषि ने लिखा है - "(**स पर्यगात्**) जो ईश्वर सर्वव्यापक आदि विशेषण युक्त है, सो सब जगत् में परिपूर्ण हो रहा है, उसकी व्याप्ति से एक परमाणु भी रहित नहीं है।"

7. **"स ओतः प्रोतश्च विभुः प्रजासु"** (यजु. 32.8) मन्त्र के संस्कृत भाष्य के पदार्थ में ऋषि ने लिखा है - **"विभूः = व्यापकः, प्रजासु = प्रकृतिजीवादिषु।"** प्रकृति जड़ पदार्थ है। ईश्वर उसमें '**विभूः**' = '**व्यापकः**' है। जब जड़ प्रकृति में ईश्वर व्यापक है, तो जड़ मूर्ति में व्यापक क्यों नहीं? इसी मन्त्र के भावार्थ में लिखा है - **"येन व्याप्तेन विना किंचिदपि वस्तु न वर्त्तते"** = "जिस व्याप्त ईश्वर के बिना कुछ भी वस्तु नहीं खाली है।" जब कोई भी वस्तु ईश्वर से खाली नहीं, तो फिर मूर्ति ईश्वर से खाली कैसे हो सकती है?

8. **"अदित्यै रास्नासि"** (यजु. 1.30) मन्त्र का ऋषिकृत भाष्य भी दृष्टव्य है। वहां **"विष्णु" तथा "वेष्यः"** इन मन्त्रगत पदों के अर्थ पर विचार करने की आवश्यकता है। वहां ऋषि ने ईश्वर को पृथिवी आदि सब पदार्थों में प्रवर्त्तमान - व्यापक लिखा है। मन्त्र के भावार्थ में ऋषि ने स्पष्ट लिखा है कि जगदीश्वर "वस्तु-वस्तु में स्थित" है।

9. अपने "भ्रान्तिनिवारण" ग्रन्थ में ऋषि दयानन्द ने लिखा है - "वह (परमेश्वर) अपने स्वाभाविक गुण और सामर्थ्यादि के साथ समवाय; और जगत् के कारण (अर्थात् मूल प्रकृति), कार्य (अर्थात् संयोगजन्य कार्य-पदार्थ) तथा जीव के साथ संयोग-संबंध अर्थात् व्याप्य-व्यापकतादि प्रकार से है।

10. यह भी समझना चाहिए कि मृत शरीर में भी ईश्वर व्यापक है। दाह संस्कार तो केवल जड़ - भौतिक स्थूल शरीर का ही किया जाता है। ईश्वर अभौतिक चेतन पदार्थ होने से अग्नि से वह जलता नहीं है। अतः उस पर दाहकर्म का कोई भी प्रभाव नहीं होता है। इसी प्रकार जीवात्मा को भी जलाया नहीं जा सकता - अभौतिक चेतन पदार्थ होने से। केवल प्राकृतिक - भौतिक पदार्थों को ही अग्नि में जलाया जा सकता है।

11. सत्यार्थ प्रकाश के द्वादश समुल्लास में ऋषि ने लिखा है - **"जैसे सब घट पटादि में आकाश व्यापक है और घट पटादि आकाश नहीं, जैसे परमेश्वर चेतन सब में है और सब चेतन नहीं होता।"** वेदादि शास्त्रों में ईश्वर की सर्वत्र विद्यमानता आदि का ज्ञान कराने के लिए उसे आकाश की उपमा दी गई है। सप्तम समुल्लास में अवतारवाद के

शेष पृष्ठ 9 पर

66वें स्वतन्त्रता दिवस पर विशेष

योगक्षेमो नः कल्पताम

● प्रो. ओम कुमार आर्य

उपर्युक्त मंत्रांश यजुर्वेद 22/22 के उस प्रसिद्ध मंत्र से उद्धृत किया गया है जो हमारी वैदिक राष्ट्रीय प्रार्थना है, वैदिक राष्ट्र–गान है। इस पूरे मन्त्र का काव्यानुवाद करते हुये उक्त अंश का बहुत सुन्दर भावानुवाद यूं किया गया है कि– हो *योगक्षेमकारी* स्वाधीनता हमारी।

यहां योग शब्द अध्यात्म का पुट लिये हुये है कि हम आध्यात्मिक रूप में भी सुखी हों सम्पन्न हों और 'क्षेम' अर्थात् सभी प्रकार की भौतिक सुख–सम्पदा, सुरक्षादि भी हमें सदैव प्राप्त रहे। वेद का राष्ट्र–विषयक चिंतन, राष्ट्र संबंधी अवधारणा, परिकल्पना एकांगी न होकर समग्र और सर्वांगी है। वैदिक राष्ट्रवाद के अंतर्गत प्रजाजनों के लिये मात्र रोटी, कपड़ा और मकान की चिंता ही नहीं की गई प्रत्युत उनके लिये धार्मिक, सांस्कृतिक, नैतिक और आध्यात्मिक विकास और उन्नति की भी समुचित व्यवस्था की गई है। वेद राष्ट्र को मात्र एक प्रभुतासंपन्न औद्योगिक ईकाई ही नहीं मानता इसके अतिरिक्त और भी बहुत कुछ राष्ट्र की वैदिक अवधारणा में है, वेद द्वारा प्रतिपादित 'राष्ट्रवाद' की परिकल्पना में है।

वैदिक धर्म में राष्ट्र, राष्ट्रप्रेम, राष्ट्रवाद, राष्ट्रीय भावना आदि को इतना महत्त्व दिया गया है कि वैदिक मान्यताओं के अनुसार चलने वाला व्यक्ति कभी भी कोई राष्ट्र विरोधी कुकृत्य कर ही नहीं सकता। वैदिक राष्ट्रवाद की जड़ें बहुत गहरी हैं, आज का स्वार्थान्ध, सत्तालोलुप तथाकथित सैक्युलरवाद की दलदल में धंसा राजनेता वोट बैंक की घटिया राजनीति करने वाला कोई भी दल कभी कल्पना भी नहीं कर सकता कि वेद का राष्ट्रवाद कितना उदात्त, कितना पवित्र, कितना उदार और 'सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय' की भावना से परिपूर्ण हो सकता है। इसलिये यह अत्यंत सहज और स्वाभाविक ही है कि वैदिक विचारधारा मातृभूमि के प्रति अगाध आदर एवं आस्था तथा सार्वजनिक हित की भावना से पूरी तरह ओत–प्रोत है। **'जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीसयसी'** की पावन भावना अन्यम दुर्लभ है।

आज अपने 66वें स्वतन्त्रता दिवस के शुभावसर पर ये सब बातें अपने देशवासियों और विशेषकर नई पीढ़ी को बताया नितान्त आवश्यक है। **'योगक्षेमो नः कल्पताम्'** अर्थात् हमारी स्वाधीनता चिरस्थायी हो, हमारी सुरक्षा को कभी कोई आंच न आवे, सभी प्रजाजन परस्पर प्रेमभाव से रहें, फूलें फलें, ज्ञान विज्ञान में हम उन्नत होवें, दिग्दिगन्त में हमारी यश–दुन्दुभि बजती रहे आदि–2, यही वैदिक राष्ट्रवाद है, यही आदर्श राम राज्य है।

वैदिक राष्ट्रवाद को ठीक से समझना हो तो हमें अथर्ववेद का 'पृथिवी/भूमि सूक्त' बहुत ध्यान से पढना चाहिये, जो कि **'द्वादश काण्ड'** का प्रथम सूक्त है जिसमें 63 मंत्र हैं। दूसरे शब्दों में 'अथर्व 12/1 मंत्र 1–63' राष्ट्रवाद का डिंडिम–घोष कहा जा सकता है। आज के संदर्भ में तो उक्त वैदिक सूक्त अत्यधिक प्रासंगिक है क्योंकि आज हम सुरक्षा के बाहरी एवं भीतरी खतरों से जूझ रहे हैं, भ्रष्टाचार एक भयंकर राष्ट्रीय समस्या बन चुकी है, घपले, घोटाले, स्कैण्डल, काण्ड ये सब रोज–रोज की बातें हो गई हैं, क्षेत्रवाद, जातिवाद, अलगाववाद आदि की दुष्प्रवृत्ति इतनी प्रबल और बेकाबू हो चुकी है कि हमारा अस्तित्व ही संकट में पड़ गया है। इन सबका और इन जैसी अन्य सभी समस्याओं का समाधान यदि कहीं है तो वेद में है, वेद द्वारा बताये गये राष्ट्रवाद के उच्चादर्श में है, और वेद के किसी एक सूक्त के कुछ मंत्रों में देखना हो तो उपर्युक्त 'पृथिवी सूक्त' आर्थात् अथर्ववेद 12/1 मंत्र 1–63 में है।

योगक्षेमो नः कल्पताम् अर्थात् हमारी स्वाधीनता हम सबके लिये सुखदायी हो, यह कामना तो वैदिक राष्ट्रवाद का मात्र एक आयाम है, इसके अतिरिक्त इस पूरी राष्ट्रीय प्रार्थना में (यजुः 22/22) अनेक अन्य ऐसी कामनायें हैं जो राष्ट्र के प्रत्येक वर्ग के प्रजाजनों, हमारे पशुओं, फल, फूल औषधि (समस्त पर्यावरण), आवश्यकतानुसार वृष्टि आदि में संबंधित है, अर्थात् सबकी समान सर्वांगीण उन्नति, विकास, हित–संपादन वैदिक राष्ट्रवाद की मूल भावना है, जो वर्तमान में विलुप्त प्रायः होती जा रही है जो कि राष्ट्रवासियों के लिए एक बेहद दुःखद एवं अशुभ संकेत है।

हम अपना 66 वाँ स्वतंन्त्रता दिवस बड़ी धूमधाम से, सोत्साह एवं सोल्लास मनायें, किन्तु यह न भूलें कि चन्द जगमगाते नगरों अथवा 20–25 प्रतिशत खाते–पीते, सुविधा सम्पन्न, धनकुबेरों का नाम ही देश नहीं है। वे 70–75 प्रतिशत अभावग्रस्त एवं अभागे प्रजाजन भी इसी देश के नागरिक है जो बड़ी मुश्किल से अपने लिये दो वक्त की रूखी सूखी रोटी का जुगाड़ कर पा रहे हैं। वैदिक राष्ट्रवाद में निहित भावना को हमने अपनाया होता तो इतनी भयंकर विषमता का प्रश्न ही पैदा नहीं होता। विचारकों ने राष्ट्र के जो ये तीन घटक माने हैं–

1. भूमि, 2 भूमि पर बसने वाले जन और 3 जन की संस्कृति

ये तीनों राष्ट्र की वैदिक मान्यता के पर्याप्त रूपेण अनुरूप हैं। इसलिये एक प्रभुतासंपन्न, स्वतंत्र देश में इन तीनों की सुरक्षा और भलाई पर पूरा ध्यान दिया जाना चहिये। इनकी **'स्वस्ति'** (भलाई) ही राष्ट्रीय सुव्यवस्था (शांति) का एक मात्र सुदृढ़ आधार है। दृष्टव्य है कि यज्ञ के मंत्रों में महर्षि ने **'स्वस्तिवाचनम्'** को पहले रखा है और तत्पश्चात् **'शान्तिकरणम्'** का इससे हमें महर्षि की बहुत ही सुलझी हुई, युक्ति युक्त और वैज्ञानिक सोच का भी परिचय मिलता है।

वेद–ज्ञान ईश्वरीय ज्ञान है, पूर्ण है। अखण्ड है और चारों वेदों में कहीं भी विरोधाभास या अंतर्विरोध नहीं है। जो बातें राष्ट्रीय प्रार्थना (यजुः 22/22) में है उन्हीं का पूरा समर्थन और पुष्टि अथर्ववेद के पृथिवीसूक्त' (अथर्व 12/1–63) में है और उन्हीं पर पूरा जोर ऋग्वेद के इस मंत्र में है।–

ओं इला सरस्वती मही तिस्रो देवी मयोभुवः। ऋग् 1/13/9

इसी प्रकार के सर्वहितकारी, प्रखर राष्ट्रवाद का प्रतिपादन इन मंत्रों में भी है–

ओं सरस्वती साधयन्ति धियं न इला देवी भारती विश्वतूर्तिः।
तिस्रो देवीः स्वध्या............................
ऋ 2/3/8

तथा

ओं आ भारती भारतीभिः सजोषा इला
.........................ऋ 3/4/8

इन मंत्रों में 'इला' शब्द मातृभाषा के लिए प्रयुक्त हुआ है, 'सरस्वती' अपनी संस्कृति के लिये तथा 'मही' मातृभूमि के लिये। इनका संकेत बाद के चिंतन पर आधारित राष्ट्र के इन तीन घटकों की ओर ही है, या यूं कहें कि इन घटकों– भूमि जन और जन की संस्कृति का आधार ये उक्त वेद मंत्र ही हैं।

अतः आज स्वतंत्र भारत के कर्णधारों को चाहिये कि वे वेद के राष्ट्र, राष्ट्रवाद, राष्ट्रप्रेम विषयक चिंतन को नई पीढी की शिक्षा के पाठ्यक्रम में शामिल करें, न केवल शामिल करें बल्कि हम सभी इस विचारधारा को अपने व्यवहार में अपनायें। यदि हम भ्रष्टाचार को जड़ से उखाड़ फेंकने की मंशा रखते हैं, यदि हम दलगत राजनीति की दलदल से बाहर निकलकर वास्तव में सबका भला चाहते हैं, यदि हम आरक्षण की मूल भावना के अनुरूप इसे वोट बैंक से जोड़कर नहीं देखना चाहते, छद्म सैक्युलरवाद का सहारा लेकर विभिन्न वर्गों को साम्प्रदायिक, गैर साम्प्रदायिक आदि खेमों में नहीं बांटना चाहते, सरहदों की पुख्ता सुरक्षा चाहते हैं, और सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात – यदि हम अपने प्रजातंत्र को फूलता, फलता देखना चाहते हैं, इसका भविष्य उज्ज्वल चाहते हैं तो हमें तुरंत विदेशों से आयातित राष्ट्र विषयक विचारधारा, तदनुरूप प्रत्यक्ष व्यवहार, उन्हीं से प्रभावित अपनी रीति नीति तुरन्त त्यागनी होगी और अपनी स्वदेशी, वेद प्रतिपादित राष्ट्र विषयक विचारधारा को अपनाना होगा। इसी में हम सबका भला हैं, प्रजातंत्र के उज्ज्वल भविष्य की भी इसी में गारन्टी निहित है और यह भी तय है कि हम वास्तव में ही एक महाशक्ति बनकर विश्व में अपने गौरव का परचम लहरा पायेंगे, पुनः जगद्गुरु बनकर शेष विश्व का मार्गदर्शन कर सकेंगे तथा महर्षि मनु की इस ऐतिहासिक घोषणा को दोहरा सकेंगे–

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशाद् अग्रजन्मनः स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः

यह तभी होगा जब हम 'माता भूमि पुत्रोऽहम् **'पृथिव्याः'** की पावन भावना से ओतप्रोत राष्ट्रवाद को सर्वतोभावेन अपनायेंगे और यह मानकर चलेंगे कि–

राष्ट्र नाम नहीं है केवल भूमि, पर्वत, नदियों का
या कि फिर मनुष्य, पशु पंछी
खेत, खलिहान वनस्पतियों का
इनसे ज्यादा महत्वपूर्ण कुछ
और घटक भी होते हैं
जिन्हें विचारक धर्म, संस्कृति
निज भाषादि कहते हैं
इन सबका समुच्चय, समवेद
स्वरूप ही राष्ट्र कहलाता है
वैदिक राष्ट्रवाद इन सबसे
करना प्यार सिखलाता है
प्रजाजनों का मातृभूमि से
मां बेटे का नाता है
वैदिक राष्ट्रवाद यही है
यूं वेद साफ बतलाता है।

1607/7 जवाहर नगर
पटियाला चौक जींद

www.thearyasamaj.org

वेद और वेदना

क्यों खण्ड खण्ड उत्तराखण्ड

● देवनारायण भारद्वाज

भारतवर्ष के उत्तरी भाग में विश्व के विशालतम पर्वत हिमालय की सर्वोच्च पर्वत श्रृंखलाओं के अंचल में स्थित भूभाग को उत्तराखंड कहा जाता है। इसी क्षेत्र में गंगोत्री, यमुनोत्री, ब्रदीनाथ एवं केदारनाथ संज्ञक प्रसिद्ध चारधाम सर्वमान्य तीर्थ के रूप में पूजित किये जाते हैं। कोई स्थान विशेष स्वयं तीर्थ नहीं होता है; क्यों कि वह नौका की भाँति किसी को दु:ख सागर से पार नहीं कर सकता है–तार नहीं सकता है। हाँ, उस स्थान विशेष की हरीतिमा पूर्ण दृश्यावली, जड़ी, बूटी, खनिज व जलवायु सम्बन्धी ऊर्जावान प्रभावकारी भूमिका, और वहाँ पर पहुँचकर त्याग, तपस्या एवं साधना के द्वारा सन्त–महात्माओं में उत्पन्न वेद–विद्या के तेजोमय स्वरूप का उपदेश मानव को संसार सागर से पार उतरने की प्रेरणा प्रदान करने से हम उसे तीर्थ की गरिमा प्रदान कर देते हैं। इसीलिए यजुर्वेद (16.61) हमारा मार्गदर्शन करता है। यथा–

ये तीर्थानि प्रचरन्ति सृकाहस्ता निषङ्गिण:।
तेषा ँ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि।।

अर्थात् जो हमें दु:ख और अज्ञान के सागर से पार करा दे, वह तीर्थ होता है। हमारे माता–पिता–पितरजन, आचार्य, वेद, सत्य, सत्संग, ईश्वरोपासना एवं नौका हमारे लिए तीर्थ होते हैं, सब मनुष्यों का धर्म है कि वे इन तीर्थों का आश्रय लेकर सुखदायी वेदज्ञान को ग्रहण कर उसे सम्पूर्ण विश्व में फैलायें। सामवेद (मन्त्र 143) भी कुछ ऐसा ही उपदेश हमारे लिए करता है।

उपह्वरे गिरीणां संगमे च नदीनाम्। धिया विप्रो अजायत।

अर्थात् पर्वतों की गुफाओं में तथा नदियों के संगम पर पहुंच विप्रगण अर्थात् वे लोग जो अपनी पालना एवं पूर्णता के निमित्त विशेष रूप से सचेष्ट हैं, जाकर बुद्धि व ज्ञान को प्राप्त करते हैं। ऋग्वेद (2.7.3) के अनुसार– "विश्वा उत त्वया वयं धारा उदन्या इव। अति गाहेमहि द्विष:।" सज्जन भक्त की भावना यही होती है कि दुर्जन उससे दूर हो जायें तथा दु:ख एवं दोष भी उसी प्रकार दूर हो जायें, जिस प्रकार जल सभी अशुद्धियों को दूर कर देता है। इसके लिए उसे प्रार्थना एवं पुरुषार्थ निरन्तर करते रहना चाहिये।

हर वेदनुयायी अपनी दैनिक प्रार्थना–साधना 'सन्ध्या' के द्वारा धरातल से उठकर उत्तराखण्ड की पंचकोशीय यात्रा नित्य करता है। वह अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय कोशों को पार करके आनन्दमय कोश तक पहुँचता है। ये कोश क्रमश: शरीर–प्राण–मस्तिष्क एवं ब्रह्ममूर्धा के रूप में समझे जा सकते हैं। यह विनियोग बिना स्पष्टीकरण के विचित्र लग सकता है किन्तु विज्ञान समस्त है। धरातल से उठकर ब्रह्ममूर्धा के उत्तराखण्ड पर पहुँचकर ही मानव को आनन्द का उपस्थान प्राप्त होता है, और हमारा मन्त्र–मनन सार्थक हो उठता है।

उद्वयं तमसस्परि स्व: पश्यन्त उत्तरम्।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्।।

अर्थात् हम अन्धकार से ऊपर उठें, परमात्मा के आनन्दमय ज्योति स्वरूप का अनुभव करते हुए और ऊपर उठें। देवों में देव–महादेव–सकल जगत के उत्पादक सूर्यों के महासूर्य परमात्मा को प्राप्त करके उत–से उत्तर, उत्तर–से उत्तम सद्गुण सम्पन्न श्रेष्ठ हो जायें। मानव–शरीर को प्राण ऊपर की ओर उठाये रहते हैं, शरीर में स्थित आत्मा को हृदय की भावनायें अधिक ऊर्ध्वगामी गुणमय गतिशील बनाती हैं और मानस में विद्यमान विज्ञान उन भावनाओं में छटनी करके अकल्याणकारी कंकड़ों को हटा देता है, तभी वे ब्रह्ममूर्धा के स्तर पर पहुँचकर चिन्तन की चेतना से मानव आनन्द के उत्तराखण्ड पर पहुँच जाता है। इस तेजोमय ज्ञानसूर्य–ब्रह्ममूर्धा की चिन्तना की विद्युत से जीवात्मा लोक व परलोक की सर्वोत्तम ऊँचाई पर आसीन हो जाती है। सृष्टि में उत्पन्न असंख्य योनियों को तीन प्रकार के प्राणि–समूह में रखा गया है। एक वृक्षादि हैं जिनके सिर धरती में धँसे रहते हैं; दूसरे पशु–पक्षी –कीट–पतंग आदि हैं जिनके सिर धरती के समानान्तर झुके रहते हैं। तीसरे मनुष्य ही हैं जिनके सिर ऊपर आकाश की ओर उठे रहते हैं। मनुष्य को छोड़कर सभी प्राणी आहार–आराम–आरक्षा एवं सन्तति के चार पदों पर स्वाभाविक ज्ञान से अपने सम्पूर्ण जीवन चक्र को पूरा करते रहते हैं। मनुष्य को स्वाभाविक के साथ नैमित्तिक ज्ञान का वरदान भी प्राप्त है, जिसके बल पर वह धर्म–अर्थ–काम–मोक्ष के क्रमिक पदों पर चलने का पुरुषार्थ करता है। यदि वह मानवोचित आचरण को छोड़कर पशुवत व्यवहार करने लगता है तो उसका सिर कन्धों पर रहते हुए भी धरती की ओर झुक जाता है। वह समाज को मुँह दिखाने योग्य नहीं रहता है।

भारत (प्रकाश में रत–व्यस्त) के हर मनुष्य को जहाँ एक ओर सात्विक ज्ञान ज्योति से परिपूर्ण मस्तिष्क रूपी उत्तराखण्ड प्राप्त है, वहीं दूसरी ओर सर्वोच्च हिमालय की देवभूमि रूपी उत्तराखण्ड भी उपलब्ध है, जिसका कण–कण एवं तृण–तृण मानव मस्तिष्क के उत्तराखण्ड को जाज्वल्यमान करता है। सामवेद (मन्त्र 143) की इसी प्रेरणा से विप्रवृन्द अपनी बुद्धि एवं ज्ञान–चेतना को प्रखर बनाते हैं। शरीर के देवलोक–मस्तिष्क रूपी उत्तराखण्ड में नई स्फूर्ति का सृजन करते हैं। जैसे मैदान में उद्देश्यपूर्ण शारीरिक श्रम अथवा व्यायाम हमारे दिमाग की रक्षा प्रणाली को सक्रिय कर देता है, वैसे ही पर्वतों की ऊँची–नीची चढ़ाई–उतराई की श्रम–साध्य यात्राओं से मस्तिष्क की कोशिकाओं का जिन्हें सीमन्त (न्यूरान) कहते हैं का नवनिर्माण होता है, जिनसे जोशीले उत्साह वृद्धि के संकेत प्रकट होते हैं, साथ ही वे अवांछित उत्तेजना को शान्त भी करते हैं। पर्वतों की प्राकृतिक छटा व दृश्यावली मानव–मेधा को सुधावत शक्ति प्रदान करती है। जो स्वयमेवल मनुष्य की मेधा को संतरणशील तीर्थ का रूप प्रदान कर देती है। इसीलिए वहाँ मनुष्य शक्ति एवं शान्ति से सम्पन्न हो जाता है। यही संसार के संजाल से पार होने वाले तीर्थयात्री की भावना पर्यटक बन जाने पर संसार में अटका कर छोड़ देती है। पर्वतीय उतार–चढ़ाव के शारीरिक श्रम के साथ होने वाले भोग–विलास एवं दुर्व्यसन उसे क्षीण कर देते हैं। तब, स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन न रहकर निर्बल हो जाता है। जो पर्वत के इस उत्तराखण्ड को पाखण्ड से भर देता है और मस्तिष्क का उत्तराखण्ड भी खण्ड खण्ड हो जाता है। परस्पर प्रेरक एवं पूरक ये उत्तराखण्ड एक दूसरे के विनाशक हो जाते हैं। इसका संकेत उत्तराखण्ड के मुख्यमंत्री का यह कथन कि "आपदा को लेकर पूरे देश में ऐसा माहौल बन गया है कि सुरक्षित हिल–स्टेशनों पर भी पर्यटक नहीं आ रहे हैं।" उन्हें स्वत्व बढ़ाने वाले यात्रियों की नहीं राजस्व बढ़ाने वाले पर्यटकों की प्रतीक्षा है। देवभूमि की गरिमा को गिराकर जब हम इसे भोग–भूमि की भंगिमा प्रदान कर देंगे, तो हम देवताओं के आशीर्वाद की प्रतीक्षा करते रह जाते हैं, किन्तु वहाँ आ जाते हैं – दैत्यों के द्वारा प्रदत्त संताप एवं विलाप।

इन मानवीय दुष्प्रवृत्तियों को ध्यान में रखते हुए जो चेतावनी दैनिक हिन्दुस्तान टाइम्स ने सन् 1977 में दी थी, वही आज सच हो रही है। कहा गया था कि हिमालय बीमार हो रहा है, और अगर इसी तरह वनों का नाश होता रहा तो वह दिन दूर नहीं, जब प्रकृति विनाश का ताण्डव देखेगी और हिमालय खत्म हो जायेगा। यदि हिमालय खत्म हो गया तो देश प्राकृतिक आपदाओं के तले दब जायेगा। लकड़ी और पत्थरों के भवनों को तोड़कर सीमेन्ट–कंकरीट का बना दिया गया है। पड़ाव व धर्मशालाओं को होटल के कमरों में बदल दिया गया है। देवार्चन, प्रकृति–दर्शन, पर्वत–पथगमन की तीर्थयात्राओं को पर्यटन में बदल दिया गया है। विशेषज्ञों की आख्याओं के अनुसार हिमालय के तीर्थधाम महानगरों की भीड़भाड़ के समान व्यस्त क्षेत्र बन गये हैं। तथाकथित विकास के साधनों से मिलने वाले उस राजस्व का क्या लाभ, जो हर वर्ष की बाढ़ व चट्टानों के स्खलन से होने वाली तबाही के पुनर्वास के लिए कम पड़ती जाये।

वयस्वी पर्यावरणविद् श्री सुन्दरलाल बहुगुणा तथा मैग्सेसे पुरस्कार विजेता पर्यावरण विज्ञानी जल पुरुष राजेन्द्र सिंह की सीख है कि चारधाम को तीर्थ ही बना रहने दें। इन्हें पर्यटन स्थल बनाये जाने के परिणाम केदार घाटी में आई भीषण आपदा जैसे ही होंगे। उत्तराखण्ड देश का गौरव है, इसके संरक्षण का दायित्व केवल प्रान्त का ही नहीं, सम्पूर्ण भारतवर्ष व केन्द्र शासन का भी है। देवभूमि में डयनामाइट के विस्फोट कर सड़कें बनायी जा रही हैं। बड़ी जल–विद्युत परियोजनाओं के लिए पहाड़ों में सुरंगें बनाई जा रही हैं। इनके मलबे को नदियों में डालकर प्रवाह को अवरुद्ध किया जा रहा है। सप्ताहों बाद भी बरसात से हुए भूस्खलन का मलबा घरों में घुसकर तथा जे.सी.बी. को खाई में पलटकर मौतों का कारण बन रहा है। उन्होंने यह भी कहा है कि इतनी भीषण त्रासदी के बाद भी हमारी सरकारें, राजनीतिक संगठन व नेतागण शिक्षा लेने को तैयार नहीं हैं।

मान्य जल पुरुष का कथन प्रत्यक्ष एक उदाहरण से परिपुष्ट होता है। उत्तराखण्ड के इस वज्राघात से बचाकर कुछ स्त्री–पुरुष देहरादून लाये गये। इनको आन्ध्र प्रदेश वापिस ले जाने के लिए दो वायुयान पहुँचे, जो भिन्न–भिन्न दो राजनैतिक दलों से सम्बन्धित थे। दोनों ही इन यात्रियों को अपने अपने विमान में ले जाने के लिए उद्यत थे। इसके लिए दोनों दलों के नेताओं में जो हाथापायी एवं लड़ाई हुई उसे दूरदर्शन पर सारे विश्व ने देखा। दोनों ही पक्ष एकतापूर्ण राष्ट्रीय प्रेम, मानव–रक्षा से प्रेरित न होकर अपनी दलगत राजनीतिक स्वार्थ कामना पूर्ति के प्रति लालायित थे। प्रदेशानुप्रदेश की सीमा रेखायें तो सुचारु शासन संचालन के लिए हैं, इससे भारतमाता की ममता का विभाजन नहीं हो जाता है।

ऐतरेय ब्राह्मण ने तो यही कहा है–"समुद्रपर्यन्तायाः पृथिव्याः एक राष्ट्र:"। अराष्ट्रे राजन्य: शूरऽइषव्योऽतिव्याधी महारथो जायताम" (यजु. 22.22) अर्थात् हमारे राष्ट्र में सब राजपुरुष महारथी और अरिदल विनाशकारी शूरवीर होवें। लोकप्रिय शासक जब अपने नागरिकों के मस्तिष्क रूपी उत्तराखण्ड को पाखण्ड प्रहार से बचायेगा, तभी हमारी भारतभूमि का सर्वोच्च उत्तराखण्ड खण्ड–खण्ड होने से बच पायेगा।

'वरेण्यम्' अवन्तिका (प्रथम),
रामघाट मार्ग, अलीगढ़–202001 (उ.प्र.)

अवश्यमेव हि भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्–गीता।

मांसाहार व मदिरापान का समर्थन, पुनर्जन्म का विरोध

● मनमोहन कुमार आर्य

देहरादून में अपने अधिवक्ता मित्र से 29 मई 2013 को मिलने जाने पर वहां हमें एक पूर्व परिचित सेवानिवृत इंजीनियर व जनता दल सेक्युलर के प्रदेश अध्यक्ष से भेंट हुई। उनमें आपस में चर्चा चल पड़ी जिसमें इंजीनियर साहब ने अपनी पुरानी आदत का उल्लेख किया कि वह अपने सेवाकाल में कार्यालय समय के बाद एक दुकान पर मछली के पकौड़े खाने के लिए जाते थे। मदिरा पान का भी उन्होंने चर्चा में उल्लेख किया। हमने अपने स्वभाव के अनुरूप कहा कि ये दोनों कार्य अनुचित हैं एवं जन्म जन्मान्तर में इन अनुचित कार्यों का फल भोगना पड़ता है। इंजीनियर साहब का पहला प्रतिवाद था कि पुनर्जन्म किसने देखा और मछलियां साग–सब्जी की भांति हैं जो खाने के लिए ही बनी हैं। **यदि मछली खाना सामिष भोजी होना है तो साग–सब्जी में भी जीव होता है। दोनों ही समान है।** मदिरा पान का समर्थन हमारे जनता दल के नेता बन्धु ने किया और बताया कि अंग्रेजी शराब RUM का अर्थ Regular Use Medicine है। उन्होंने यह भी बताया कि RUM की एक बोतल में 750 मिली. शराब होती है जिसका यदि एक महीने तक सेवन करना है तो प्रतिदिन 25 मिली. मात्रा ही प्रयोग में आती है जो कि कुछ हानिकारक प्रतीत नहीं होती। समय कम होने के कारण हमने संक्षेप में इसका प्रतिवाद किया और वार्ता समाप्त हो गई। हम समझते हैं कि हममें से प्रायः अनेकों के साथ यदा–कदा ऐसी घटनायें होती रहती हैं। अतः इस पर विचार कर लेना उचित है।

सबसे पहले मदिरा को लेते हैं कि क्या इसका सेवन उचित है। मदिरा जैसा कि इसका नाम है, इसे नशे के लिए प्रयोग में लाया जाता है। नशा हो जाने पर मनुष्य को आराम मिलता है तथा वह सुख का अनुभव करता है, अशान्त व्यक्ति को निद्रा भी आ जाती है। यह सभी मानते हैं कि मदिरा का प्रभाव हमारे मस्तिष्क व बुद्धि पर होता है। **परमात्मा ने बुद्धि सत्य व असत्य के विवेक के लिए बना कर हमें प्रदान की है।** हमारा मन संकल्प व विकल्प करता है। बुद्धि सत्य व असत्य का विवेचन करके मन को निर्णय देती है कि मन का संकल्प करणीय है अथवा नहीं। मदिरापान कर लेने पर बुद्धि कार्य करना या तो बन्द कर देती है या फिर उसके विचार करने की शक्ति पर मदिरापान का ऐसा असर होता है कि वह कुछ समय के लिए प्रायः निष्क्रिय हो जाती है या अल्प–सक्रिय रहती है। **इसे मदिरापान करने वाले लोग सुख व सूकून मानते हैं। लगातार सेवन करने से बुद्धि की क्षमता स्थाई तौर पर क्षीण हो जाती है और जिस उद्देश्य से परमात्मा ने हमें बुद्धि दी थी, वह अपना प्रयेजन पूरा करने में कृतकार्य नहीं रहती।** अच्छी खासी सक्षम बुद्धि को रोगी बनाकर कर उसके कार्य करने की क्षमता को कम करना क्या उचित है? यह हम अपने मदिरापान करने वाले मित्रों पर छोड़ते हैं। दूसरा पक्ष यह भी है कि बुद्धि को मदिरा पान द्वारा आराम करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि कार्य करने से बुद्धि थकती नहीं है। हमने विद्यार्थियों को देखा है कि जो सारा दिन पढ़ते हैं और जब मानसिक या शारीरिक रूप से कुछ थक जाते हैं तो थोड़ा सा आराम करके पुनः अपने कार्य में लग जाते हैं। **वर्षों तक लगातार इस प्रकार कार्य करने पर भी उनकी बुद्धि की क्षमता में वृद्धि ही देखी जाती है। अतः यह सिद्ध है कि मदिरा पान न करना ही बुद्धि को स्वस्थ रखना है और जीवन भर उसे सक्रिय रखना व उसकी क्षमता के अनुरूप उससे उपयोग लेना ही अधिक विवेकपूर्ण है।** हमारा विचार है कि यदि हम प्रतिदिन 25 मिली. मात्रा का ही सेवन करें तो भी इससे हमारी मानसिक क्षमताओं पर कुछ न कुछ कुप्रभाव पड़ना अवश्यंभावी है। इसी क्रम में यह भी ज्ञातव्य है कि मदिरापान करने से बुद्धि के शिथिल हो जाने से मन से सात्विक विचार निकल जाते हैं व उसके स्थान पर तमोगुण व रजोगुण से प्रभावित विचार मन में स्थान पा लेते हैं। मदिरापान की अपवित्रता के कारण मन में काम, क्रोध, लोभ, मोह, द्वेष, अहंकार आदि वृद्धि को प्राप्त होकर मनुष्य के पतन का कारण बनते हैं। **यही कारण है कि सृष्टि के इतिहास में एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं हुआ जिसने यह दावा किया हो कि मदिरापान के साथ वह योगाभ्यास भी करता रहा हो और उसे ईश्वर का साक्षात्कार हुआ हो।** इसका सीधा अर्थ है कि मदिरापान से व्यक्ति ईश्वर, भक्ति, उपासना, योगाभ्यास व सात्विक विचारों से दूर हो जाता है जो इस जीवन में पतन की निशानी है। इस कारण भावी जन्मों का समय व आयु इस जन्म के कार्यों की सजा के फलस्वरूप दुःखों में बितानी होगी क्योंकि मदिरापान सार्वत्रिक पतन की निशानी है।

अब मांसाहार पर चर्चा करके देखते हैं कि क्या इसका सेवन स्वास्थ्य के लिए लाभदायक है अथवा हानिकारक एवं धर्म की दृष्टि से भी यह कृत्य उचित है या नहीं? मांसाहार बकरी–बकरा, भेड़, मुर्गी–मुर्गा, कई प्रकार के पक्षी, मछलियां, गाय, भैंस आदि को मारकर उनके मांस को अग्नि में पकाकर, उसमें तेल, घी, नमक, मिर्च व मसाले आदि मिलाकर और उसे नाना प्रकार से स्वादिष्ट रूप देकर अन्य खाद्य पदार्थों रोटी, चावल–भात आदि के साथ भक्षण किया जाता है। जाहिर है कि जब उसमें भिन्न प्रकार के पदार्थ मिला दिये जायेंगे तो वह जिह्वा को प्रिय तो हो ही सकता है। जिस प्रकार फलों को पेड़ से तोड़कर खाया जाता है या फिर अन्न व साग–सब्जियों को खेतों में पकने पर या तोड़कर उसे थोड़े से प्रयास से अग्नि में तपा–पकाकर व हल्का, नमक–मिर्च–मसाले डालकर खाया जाता है, मांस पकाने व खाने की प्रक्रिया उससे भिन्न व खर्चीली है। स्वास्थ्य की दृष्टि से देखें तो वनस्पतियों, अन्न व साग–सब्जियों का भोजन सुपाच्य होता है। और शीघ्र ही पच जाता है, इससे शरीर की पाचन प्रणाली पर अधिक भार नहीं पड़ता और इसे पचाने में शरीर की अधिक ऊर्जा व्यय नहीं होती जबकि मांस व सामिष भोजन को पचाने में अधिक सयम व पाचन प्रणाली पर अधिक भार पड़ता है जिससे पाचन तंत्र के बिगड़ने की सम्भावना अर्थात् मन्दाग्नि के रोग की सम्भावना होती है। हम संसार में शाकाहारी प्राणियों को देखते हैं जिसमें हाथी व घोड़े को ही लें, तो इन दोनों पशुओं में अधिक बल होता है और यह बल व शक्ति के अधिक कार्य करते हैं जबकि मांसाहारी पशुओं में बल की मात्रा तो कम होती ही है साथ ही वे अपना शिकार छुप कर या धोखे से करते हैं जिससे यह अवगुण मांसाहारी में भी आता है। इसका प्रमाण यह कहावत है कि **"जैसा खाए अन्न वैसा बने मन"**। यदि ऐसे पशु का मांस खाया जाये जो रोगी हो तो उसका वह रोग भी भिन्न–भिन्न रूपों में मांसभक्षी मनुष्य में प्रविष्ट होने की पूरी सम्भावना है। विदेशी लोग जो मांस खाते हैं, उसका एक कारण वहां भारत के अनुरूप वैदिक सनातन धर्म, संस्कृति, विचारों व ज्ञान का अभाव है। होना तो यह चाहिये था कि विदेशी हमारा अनुकरण करते, हमने उल्टा किया कि हमने उनकी बुरी बातों का अनुकरण कर लिया जिसे शीघ्रताशीघ्र छोड़ना श्रेयस्कर है। घोड़े को तो विदेशियों ने भी बल का प्रतीक माना है और इसी कारण ऊर्जा की इकाई के रूप में **एचपी** या **हार्सपावर** के रूप में स्वीकार किया है। इस बात पर भी यदि चर्चा करें कि क्या मांसभक्षी लोग शाकाहारी लोगों से शारीरिक बल व मानसिक शक्ति में कुछ अधिक होते हैं तो इसका उत्तर भी शाकाहारियों के पक्ष में जाता है कि शारीरिक बल शक्ति शाकाहारी मनुष्यों एवं प्राणियों में ही अधिक है। रामायण काल में हनुमान तथा महाभारत काल में भीम के कार्यों का स्मरण किया जा सकता है। हम समझते हैं कि मनुष्यों के पश्चात सबसे बुद्धिमान प्राणी बन्दर है जो कि शाकाहारी है। पालतू बन्दर को जो भी सिखाया जाता है उसे वह सरलता से ग्रहण कर लेता है। जितने भी शाकाहारी पशु हैं उनके दांतों की बनावट भी मनुष्यों के समान है जिससे यह तथ्य सामने आता है कि ईश्वर व प्रकृति से मनुष्य को शाकाहारी होने का आदेश है। अन्यथा मनुष्यों के दांत कुत्ते, बिल्ली, सिंह आदि के समान नुकीले व कुछ शाकाहारी पशुओं के समान होते। एक प्रश्न और सामने आता है कि शाकाहारी पशु मांस का सेवन क्यों नहीं करते और मांसाहारी जंगली पशु शाकाहारी वनस्पतियों का सेवन क्यों नहीं करते। इससे भी यह रहस्य सामने आता है कि ईश्वर ने इन सभी पशुओं को स्वाभाविक ज्ञान दिया है और उनके भोजन निश्चित कर रखे हैं जिसका ज्ञान इन पशुओं को सदैव रहता है और वे उसी आदेश का पालन करते हुए अपने लिए निर्धारित भोजन ही करते हैं। इसके पीछे

शेष पृष्ठ 11 पर ☞

मेरी संक्षिप्त आत्म कथा

रोग से मुक्ति पाने की भावना से गायत्री उच्चारण

● हरिश्चन्द्र वर्मा वैदिक

मेरा जन्म श्री शुभ सम्वत् 1992 शाके 1859 कार्तिक शुक्ल प्रतिपदयां तिथौ 25-13 सोमे तदुपरि द्वितीयांतिथौ रात्रौ 12 वदनाभ्यान्तरे जन्म! अर्थात् सन् 1935 ई. में, जिला-गाजीपुर (उ.प्र.) के पोस्ट आवादान (बैरान) ग्राम में हुआ था। मेरे पिता- प्रभुराम वर्मा एवं माता इन्द्रावती देवी पौराणिक विचार की थी। पिता जी के यहां धार्मिक पुस्तकें रामायण-गीता आदि मौजूद रहती थीं। उस समय रामायण का पाठ खूब होता था।

जब 6 वर्ष के हुए तब मुझे उसी बैरान ग्राम की हिन्दी प्रायमरी स्कूल में प्रवेश करा दिया गया। उस समय अंग्रेज हटाओ का आन्दोलन चल रहा था। जमीदारों के उत्पात से घर में डकैती हो जाने के कारण हमारे पिताजी निराधार हो गये। काम की तलाश में इधर उधर भटकते रहे। अंत में अपने ग्राम से 7 मील की दूरी पर मुहम्दाबाद एक कस्बा है वहीं मेरे पिताजी ने घर भाड़ा पर लेकर अपना स्वर्ण शिल्पी का काम करना प्रारम्भ कर दिया और हमको वहां से हटाकर मुहम्दाबाद के गुरुआना स्कूल में भरती करा दिया। वहां गणित की शिक्षा दी जाती थी।

एक तरफ शिक्षा और दूसरी तरफ अपने पिता के साथ काम भी करता था। हमारी माता जी का देहान्त जब हम 13 वर्ष के थे तभी हो गया था। तत्पश्चात् वहां दो वर्ष रहने के बाद भी जब व्यवसाय नहीं चला तब वहां से हमें साथ लेकर पिताजी अपने सम्बन्धी के निर्देश पर (पं. बंगाल के जिला बीरभूम) मुराराई चले आये और एक घर भाड़ा लेकर दुकान खोल दिये। धीरे-धीरे कारोबार चलने लगा। उस समय हम 16 वर्ष के थे और अपने पिताजी के साथ काम करने लगे थे। परन्तु वह गरीबी हम नहीं भूल सकते, बचपन से युवावस्था तक बहुत दुःख सहे। आर्थिक स्थिति बहुत खराब भी। यहां तक कि जिस समय मुहम्दाबाद के गुरुआना स्कूल में पढ़ने जाता था तो मुट्ठीभर दाना ही दिन का भोजन होता था। एक एक पैसे का मोहताज था। माता के देहान्त के बाद मेरा दुःखमय एवं विद्यार्थी जीवन कहीं भी ठीक से सफल नहीं हुआ।

जब हम 20 वर्ष के हुए तब हमारे पिताजी ने हमारी शादी कर दी। धार्मिक भावना तो मुझमें पहले से ही थी किन्तु धर्म की सच्चाई का पता नहीं था। जब मैंने 1957 में कानपुर गया तब मुझे वहां एक 'सत्यार्थ प्रकाश' प्राप्त हो गया। बस उसे अध्ययन करने लगा और अपना काम भी करता रहा।

सत्यार्थ प्रकाश के स्वाध्याय से धर्माधर्म का ज्ञान और कुसंस्कार नष्ट होने लगा। उसके पश्चात जब हम आर्य मित्र आदि के ग्राहक बन गये तब उनके विज्ञापनों से हमें वैदिक पुस्तकें उपलब्ध होने लगीं। स्वाध्याय ग्रन्थों में केवल आर्य साहित्य की पुस्तकें नहीं थी मार्क्सवाद, वैज्ञानिक भौतिकवाद आदि के ग्रन्थ भी थे सभी को मैंने देखा। अन्त में ऋषि दयानन्द के दस नियमों और वैदिक सिद्धान्त के अन्तर्गत पतंजलि ऋषि का योगशास्त्र=अष्टांग योग द्वारा स्वयं को जानने एवं उन साधनों के द्वारा ईश्वरानन्द की प्राप्ति हो सकती है के ज्ञान को सत्य समझा।

इधर पिताजी का कारोबार ठीक से चलने लगा। 1559 में थोड़ा वास करने योग्य जमीन खरीद लिये। उसके पश्चात क्रमशः घर बनाना आरम्भ कर दिये और 1962 में एक साधारण मकान बना लिये।

पश्चात 1971 तक मेरी पत्नी चार बच्चों की मां बन गई। हमारे संसारिक जीवन में प्रथम कन्या (जिसका नाम कमलारानी वर्मा है) और तीन पुत्र (सुरेश, रमेश व दिनेश) हैं। इन सभी को शिक्षा-दीक्षा एवं अच्छे संस्कार दिये। जब से हम स्वाध्याय से आर्य विचार के हो गये थे तभी से सन्ध्योपासना किया करते थे। सन् 1960 के लगभग जब हम कलकत्ता गये तब उस समय 19 विधान सरणी आर्य समाज मंदिर में 'शास्त्रार्थ महारथी अमर सिंह आर्य पथिक से भेंट किये। उन्होंने एक पुस्तक भी हमें दिया।

एक दिन हमारे मन में विचार आया कि पुस्तक पढ़कर प्राणायाम योगाभ्यास करना ठीक नहीं, गुरु दीक्षा से करना उचित होगा।

समयानुसार मैंने आचार्य पं. वीरसेन वेदश्रमीजी (वेदसदन, महरानी पथ, इन्दौर-1 (म.प्र.) को अपने यहां आमंत्रित किया। वे हमारे यहां 2 फरवरी 1969 में पधारे। उन्हीं से यज्ञोपवीत और गुरुदीक्षा ली। आचार्य जी हमारी श्रद्धा से एक सप्ताह रहकर हमें गायत्री मंत्र उच्चारण करने की पद्धति, वेद मंत्रउच्चारण करने के नियम, सन्ध्योपासना करने के मंत्र ज्ञान तथा ध्यान करने के पूर्व दीर्घस्वासन, कपालभाति और अनुलोम-विलोम के पश्चात् उसे करने के नियम बताये अंत में भ्रामरी करने को कहे।

सप्ताह भर हमें अपने साथ लेकर मंत्र के साथ हवन करते और कराते रहे और वैदिक मंत्र के उच्चारण के नियम भी बताते रहे। आचार्य के चले जाने के बाद हमें स्वयं आश्चर्य लगने लगा कि हर विषय पर लेख कैसे लिख देता हूँ। अतः मेरे में शुद्धता और परिवर्तन का कारण आचार्य जी की प्रतिभा का ही फल था और है। एक बार मुझे आचार्य जी ने उपदेश दिया कि आप एक हजार गायत्री मंत्र का जप कीजियेगा सो मैंने क्रमशः पूरा कर दिया।

मैंने सर्वप्रथम 1970 में एक निबन्ध लिखा। शीर्षक था 'प्रेरक तत्व' जो जिला पारडी सूरत से प्रकाशित हो गया था। इससे मेरा उत्साह बढ़ा और आर्य मित्र लखनऊ तथा सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा से मेरा लेख प्रकाशित होने लगा। उस समय उसके सम्पादक प्रकाशजी शास्त्री जी थे। 'आर्य संसार' कालकत्ता से भी लेख प्रकाशित होने लगा। बंगला 'वेदमाता' में भी संपादक पं. प्रियदर्शन सिद्धान्त भूषण जी हमारे हिन्दी लेख को बंगला में अनुवाद करके उसमें प्रकाशित कर देते थे।

उस समय 'आर्य समाज' 19 विधान सरणी, कलकत्ता 6 का 85 वॉं वार्षिकोत्सव, मुहम्मदअली पार्क में हो रहा था। वहां पर हम सायं 5 बजे पहुंचे। मंच पर पं. प्रियदर्शन सिद्धान्त भूषण जी से बातें हुई और वहाँ जो उस समय छबीलदास सेनी मंत्री थे उनसे बातें हुई। मैं अष्टांगयोग के सम्बन्ध में भाषण देने वाला था। किन्तु बुध ावार का कार्यक्रम पहले ही छप चुका था इसलिए भाषण नहीं दे सका। वहाँ पास ही में महात्मा आनन्द स्वामी जी बैठे थे उनको मैंने प्रणाम किया।

उसी वर्ष हमारे यहां मुराराई पं. प्रियदर्शन जी आये। उनसे ईश्वर, जीव और प्रकृति के संबन्ध में आलोचना की गई। दो-तीन सज्जन भी उनसे मिलने आये थे। वे प्रातः कलकत्ता चले गये।

सन् 1974 में मैंने दिल्ली जनज्ञान से चारों वेद मंगवा लिया। उसके पश्चात् 2 सितम्बर 1973 में आर्य युवक परिषद दिल्ली सत्यार्थ शास्त्री की परीक्षा दी, उसका प्रमाण पत्र आया और सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की ओर से सत्यार्थ प्रकाश के प्रश्नों के उत्तर लिखे 'सत्यार्थ भास्कर' की उपाधि प्राप्त हुई। पुनः आर्य साहित्य मंडल अजमेर से प्रश्न पत्र आये और यहां हाईस्कूल के केदार मास्टर की देखदेख में 'विद्यावाचस्पति' की परीक्षा दी, वहां से भी वाचस्पति का प्रमाण पत्र हमें प्राप्त हुआ।

इस प्रकार विद्याध्ययन करते रहे। मेरे नाम के बाद आचार्य जी पत्र में हमें 'वैदिक' लिखा करते थे। आश्रम से मैं गृहस्थ होते हुए भी आचार्य जी जब चले गये तभी से हम योगाभ्यास में लीन होने लगे। उस समय मेरा प्रत्याहार, ध्यान बहुत अच्छा होता था। एक आसन में एक घंटा अन्तर्मुखी होने का अभ्यास हो गया था। उस समय संसार की माया एक अलग जैसी हमें लगती थी।

परन्तु हमारे पिताजी हमारी वैराग्य की भावना को देखकर कहने लगे कि अभी तुम सब त्याग दोगे तो इन बच्चों को कौन देखेगा, पूज्य आचार्य जी के यहां से वैसा ही पत्र आया कि अभी केवल प्रातः काल ही गृहस्थ में रहकर योग का स्वाभाविक अभ्यास करना है। और अपने संसार को भी देखना है, केवल धर्म साध्य नहीं है धन भी साध्य है अतः दोनों को लेकर चलना है। इसके पश्चात् मैंने 12 वर्ष तक साहित्य चर्चा आदि बन्द कर दिया। मेरे सभी लड़के बी. कॉम. पास कर चुके थे। मेरा लिखना बन्द हो गया। हम घर-संसार को बनाने में जुट गये। प्रथम पुत्री एवं तीनों लड़कों का विवाह कर दिये।

उसके बाद 11 दिसम्बर 1985 को हमारे पिताजी का देहान्त हो गया। जब हमारे पिताजी को हृदय का दौरा हुआ तब बहुत अशान्त होने लगे। उसी कष्टावस्था में तीन बार 'राम' और मेरी तरफ देखकर तीन बार 'ओम्' बोले और तब शान्त। कम्बल बिछा दिया गया और वे सो गये। धीरे-धीरे उनका शरीर ठण्डा होने लगा। डाक्टर आये पिताजी को मृत घोषित कर दिये। उस समय मुझे ऐसा लगा कि एक पर्दा गिर गया। पिताजी के देहान्त के बाद हम नित्य सन्ध्योपासना करने लगे। उसके पश्चात् मैंने 'वैदिक ज्ञान धारा' नामक पुस्तक लिखा -जिसे प्रकाशन के लिए सन् 1999 में 'मधुर प्रकाशन' कार्यालय, दिल्ली सम्पादक श्री राजपाल सिंह शास्त्री जी को दे दिया। एक और अपने लेखों के संग्रह से पुस्तक 'वैदिक आलोक दर्शन' का सजा रहा था!

किन्तु 2001 में मेरा दीपावली के दिन ब्रेनस्टोक हो गया। हम तीन दिन अज्ञान थे। थोड़ा होश आने पर हम बोल चल नहीं सकते थे। लकवा जैसा हो गया था। लड़कों ने बर्दवान के डाक्टर सी.बी. चटर्जी को दिखाकर 'जीवन दीप नर्सिंग होम में भर्ती करा दिया। साथ ही मेरी पत्नी भी रहती थी। चिकित्सा के चलते आठ दिन बाद ईश्वर की कृपा से थोड़ा बोलने चलने लगे। घर आने पर दो वर्ष बिस्तर पर थे। अधिक बोलने चलने से आज भी मेरा मस्तिष्क, शरीर थर्राने लगता है।

मैं पुनः 2004 से क्रमशः लेख लिखने

शेष पृष्ठ 9 पर

☞ पृष्ठ 4 का शेष

ईश्वर मूर्ति में भी व्यापक...

खण्डन में ऋषि ने लिखा है कि – **"आकाश अनन्त और सब में व्यापक है।"** ईश्वर अतीव सूक्ष्मात्सूक्ष्मतर होने से समस्त जीव एवं सकल जड़ पदार्थों में अखण्ड एकरस व्यापक – विद्यमान रहता है। जीव एवं सकल जड़ पदार्थ तथा मूल प्रकृति "व्याप्य" हैं, ईश्वर उन सबमें ''व्यापक'' है। व्याप्य और व्यापक पदार्थों में वैधर्म्य के कारण भिन्नता बनी ही रहती है। दोनों स्वरूप से अभिन्न नहीं हो जाते।

12. **प्रजापतिश्वरति...** (यजु. 31. 19) मन्त्र की व्याख्या में ऋषि ने लिखा है – **"स एव प्रजापतिः सर्वस्य स्वामी जीवस्यान्यस्य च जडस्य जगतोऽन्तर्गर्भे मध्येऽन्तर्यामिरूपेणाजायमानो अनुत्पन्नो अजः सन्नित्यं चरति।"** भाषार्थ : ''जो प्रजा का पति अर्थात् सब जगत् का स्वामी है, वही **जड़ और चेतन के भीतर और बाहर अन्तर्यामिरूप से सर्वत्र व्याप्त हो रहा है।"** – ऋ. भा. भूमिका, सृष्टि विद्या विषय। इस प्रमाण से यथार्थ का बोध सुगमता से हो सकता है।

13. सत्यार्थ प्रकाश के एकादश समु. में मूर्तिपूजा खण्डन प्रकरण में ऋषि दयानन्द ने ऐसा कहीं भी नहीं लिखा है कि सर्वव्यापक ईश्वर मूर्ति, पुष्प, पत्र, घण्टा, घड़ियाल, हाथ, शिर, जल, चन्दन, धूप, अन्न आदि में विद्यमान नहीं होता है। सत्यार्थ प्रकाश में यह स्थान ध्यान से पढ़ने योग्य है। ऋषि ने वहां अन्त में स्पष्ट लिखा है – **"क्योंकि उन सब पदार्थों में परमात्मा व्यापक है।"** अतः यहां उन्होंने मूर्ति (व्याप्य) पदार्थ की उपासना का खण्डन किया है और कहा है कि व्यापक की – ईश्वर की उपासना करनी उचित है। सर्वव्यापक ईश्वर की किसी एक ही वस्तु (मूर्ति) में भावना करने को अनुचित बताया है। उस वस्तु (मूर्ति) में भावना करने को अनुचित बताया है। उस वस्तु में ईश्वर की सत्ता का निषेध नहीं किया है। "परमात्मा सर्वव्यापक होने से वह मूर्ति में भी विद्यमान है" – इस सैद्धान्तिक बात को प्रतिपादित करने का अर्थ यह कदापि नहीं निकालना चाहिए कि ऐसी बात करने वाला व्यक्ति मूर्तिपूजा को प्रोत्साहित करना चाहता है। **मूर्तिपूजा का तो खण्डन ही करना उचित है, मगर इसके लिए मूर्ति में ईश्वर की सत्ता ही नहीं है – इस प्रकार की अवैदिक बात करना सर्वथा अनुचित है।**

15. फिरोजपुर में पं. कृपाराम नामक एक व्यक्ति ने महर्षि से पूछा कि – "बतलाओ, मेरी इस घड़ी में ईश्वर कहां है?" उसके उत्तर में महर्षि ने आकाश और अपने सोटे का उदाहरण देकर उस व्यक्ति को समझाया कि ईश्वर, घड़ी, सोटा इत्यादि पदार्थों में विद्यमान है। जगत् का कोई भी पदार्थ चाहे जड़ हो या चेतन ईश्वर की व्यापकता से पृथक् नहीं है। (द्र. दयानन्द शास्त्रार्थ संग्रह, प्र. आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, जून 2010 संस्करण, पृ. 125–126)

15. आर्य समाज के महान् लेखक एवं दार्शनिक विद्वान् श्री पं. गंगाप्रसाद जी उपाध्याय ने लिखा है – "ईश्वर सर्वव्यापक है। वह अणु–अणु और परमाणु–परमाणु में विद्यमान है। वह जीव के भीतर है, इसलिए उसको अन्तर्यामी कहते हैं। वह अन्तर्यामी ईश्वर हमारे सब कामों को जानता है और उसी के अनुकूल हमारी भलाई करता है। कुछ दार्शनिक लोगों का आक्षेप है कि जब तक हर परमाणु और हर जीव के बीच में कोई खाली स्थान न हो, उस समय तक कोई दूसरी वस्तु उसमें व्यापक नहीं हो सकती। इसलिए परमाणु या जीव को एक असंयुक्त वस्तु माना जाय तो ईश्वर उसमें कैसे व्यापक हो सकेगा? परन्तु यह नियम भौतिक पदार्थों का है। दीवार में जहां–जहां छिद्र होते हैं, वहां पानी व हवा भर जाती है, परन्तु जहां छिद्र नहीं होता वहां भर नहीं सकता। परन्तु अभौतिक चेतन तत्त्वों के लिए यह नियम नहीं है। आकाश सब तत्वों में व्यापक है। इसी प्रकार ईश्वर समस्त जीवों और परमाणुओं में व्यापक है। ईश्वर की व्यापकता में भौतिक नियम नहीं लग सकता।" (गंगा ज्ञान सागर, अनुवादक एवं संपादक – प्रो. राजेन्द्र 'जिज्ञासु', प्र. गोविन्दराम हासानन्द, 1999 संस्करण, प्रथम भाग, पृ. 59)

16. वैसे तो सर्वव्यापक शब्द का अर्थ ही यही होता है कि सभी पदार्थ में व्यापक रहने वाला अर्थात् सब जगह उपस्थित – विद्यमान रहने वाला। ईश्वर सब जगह उपस्थित है इसका अर्थ यही है कि वह सभी पदार्थों में – अन्दर बाहर एकरस व्यापक–विद्यमान हैं।

उक्त प्रमाणों से यह स्पष्ट होता है कि ईश्वर मूर्ति आदि समस्त जड़ पदार्थों में भी अखण्ड एकरस व्यापक रूप से विद्यमान होता है।

8–17 टाउनशिप
पो. नर्मदानगर,
जि. भरूच, गुजरात–392015

☞ पृष्ठ 8 का शेष

रोग से मुक्ति पाने की...

लगा। 'वैदिक आलोक दर्शन' का मधुर प्रकाशन में मुद्रण छप चुका है पर रीडिंग देखना शेष है इसलिये यह पुस्तक रुका हुआ है। कब उसे कोई देखेगा और कब निकलेगा कहा नहीं जाता।

मैंने 2005 में दिनेश को साथ लेकर 19 विधान सरणी कलकत्ता गया। वहां पं. उमाकान्त उपाध्याय जी से मिले उनसे कुछ बातें भी हुईं। हवन सामग्री भी खरीदे।

3 जून 2006 शरिवार को प्रातः 5 बजे जब बिस्तर से हम उठे तब मेरा ऐसा मस्तिष्क चकराया कि पुनः बिस्तर पर गिर पड़ा इधर उधर गरदन घुमाने से घुमटा होने लगता। बाये तरफ करवट लेने से चक्कर आने लगता। तुरंत बर्दवान गये। डाक्टर ने कहा स्पॉण्डिलाइटिस हो गया है। दो बार डाक्टर के यहां गये। इन्जेक्शन औषधि दिये कोई फायदा नहीं हुआ। मस्तिष्क का व्यायाम करने को नियम बताये उससे भी कुछ नहीं हुआ।

अंत में मैं 6 एवं 7 सितम्बर 2006 को शनिवार प्रातः चार बजे से अन्तर मन में रोग से मुक्ति पाने की भावना से गायत्री मंत्र का उच्चारण करने लगे। उस पवित्र माता को पुकारने लगे। जब 8 सितम्बर को प्रातः त्रिकोणासन किया, तब घुमटा जैसा नहीं लगा–मुझे पूर्ण विश्वास हो गया कि प्राणों की रक्षा करने वाली गायत्री माता की ही कृपा है।

अतः इस जीवन में बहुत कष्ट और बहुत बदलाव हुआ है। जब तक जीवन है तब तक सुख दुःख लगा ही रहता है। अपने इष्टदेव को कभी न भूलें, सदा सत्य और विद्या का समर्थन करें। अतः पहले अपने को सुधारें, उसके बार दूसरे को सुधरने का उपदेश दें।

''भद्रं कर्णोभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः।।। यजु.

ऋषि दयानन्द ने इस मंत्र का भाष्य कितना सुन्दर स्पष्टीकरण किया है:–

जो मनुष्य विद्वानों के साथ विद्वान् होकर कानों से सिर्फ सत्य वचनों को ही सुने, जो कुछ भी सत्य पदार्थ है, संसार में, वह सब अपनी आँखों से देखे। असत्य को ने देखे–न सुने। सत्य को देख सुनकर तो भद्रतापूर्ण व कल्याणमय जीवन व्यतीत कर सकते हैं। स्वस्थ एवं सुदृढ़ अंगों वाले शरीर से पूर्ण आयु को सुखपूर्वक प्राप्त करें। जगदीश्वर की सच्ची स्तुति करें, झूठी स्तुति की प्रशंसा न करें।''

इति संक्षिप्त जीवनी

मुरारई, जिला– बीरभूम, प. बंगाल

☞ पृष्ठ 3 का शेष

घोर घने जंगल में

शरीर में अन्न डालो; लाश के मुख में लड्डू डालो तो वह वहीं–का–वहीं पड़ा रहता है, सड़ने लगता है, उससे बदबू आने लगती है। तब सगे–सम्बन्धी भी कहते हैं, "बाबा, अब लगाओ इसे ठिकाने। जला दो या दबा दो। कब तक घर में रक्खोगे?"

मैं पिछले दिनों गया बर्मा। छः मास वहाँ रहा तो बौद्ध भिक्षुओं को भी मिला। एक विचित्र रीति है इनमें। भिक्षु को बर्मी भाषा में 'फूँगी' कहते हैं। कोई फूँगी मर जाये तो उसे तुरन्त ही जलाते नहीं। उसका पेट काटकर अन्तड़िया निकाल देते हैं। इसके स्थान पर पत्थर का कोयला कूटकर भर देते हैं। पेट को फिर से सी देते हैं और लाश को पड़ा रहने देते हैं ताकि लोग इसके दर्शन कर सकें। पत्थर के कोयले में यह गुण है कि प्रत्येक प्रकार के अच्छे–बुरे पानी को चूस लेता है। इस प्रकार वह शरीर पाँच–छः मास तक ज्यूँ–का–त्यूँ बना रहता है। इसके पश्चात् उस शरीर में फिर बदबू पैदा होने लगती है। मैं एक स्थान पर कथा कह रहा था। वहाँ एक बौद्ध भिक्षु आये। कथा समाप्त होने पर बोले, "हमारे एक बौद्ध भिक्षु का आज अन्त्येष्टि संस्कार है। आप भी आइये तो अच्छा होगा।" मैंने पूछा, "भिक्षु का देहान्त आज हुआ?" तो वे बोले, "नहीं–नहीं, तीन मास पहले हुआ था।" मैंने आश्चर्य से पूछा, "तीन मास से आप लाश को रक्खे हैं और इस गर्मी में?" तब उन्होंने बताया कि भिक्षु की लाश को किस प्रकार रखा जाता है। परन्तु जैसा मैंने कहा, इस प्रकार रखने पर भी तो बदबू आती है। शरीर सड़ने लगता है और अन्न से बना होने के कारण सड़ने लगता है। अन्न के बिना प्राण सूखने लगता है। इसलिए यह कहना भी गलत है कि अन्न ब्रह्म है। तब ठीक क्या है? उपनिषद् का ऋषि कहता है–

एते ह त्वेव देवते एकधामूयं भूंत्वा परमतां गच्छतः।

'ये दोनों देवता हैं, अन्न भी और प्राण भी। परन्तु ये परम पदवी, ब्रह्म पदवी को प्राप्त करते हैं तो उस समय जब दोनों मिलकर काम करें, एक होकर रहें। दोनों के मिलकर रहने से वह जीवन उत्पन्न होता है जिसमें सब बातें होती हैं।

परन्तु इस लम्बी–चौड़ी कहानी का तात्पर्य क्या है? प्राण और अन्न का सम्बन्ध बताने के लिए क्या उपनिषद् के ऋषि ने यह सारा व्याख्यान दिया है? नहीं, इसके पीछे एक और रहस्य भी छिपा हुआ है।

प्राण क्या है? यह अध्यात्मवाद है जिसमें हम आत्मा और परमात्मा की बातें करते है। अन्न क्या है? यह मायावाद है जिसमें हम आत्मा और परमात्मा से परे हटकर प्रकृति और इसके विभिन्न रूपों की बातें करते हैं।

ऋषि ने जो कुछ कहा उसका सीधा तात्पर्य यह है कि कोरा अध्यात्मवाद किसी काम का नहीं। कोरा मायावाद भी किसी काम का नहीं। दोनों मिलकर रहें, तब संसार का कार्य चलता है। तब जीवन चलता है। उसमें सफलता आती है।

www.thearyasamaj.org

पत्र/कविता

डी.ए.वी. विश्वविद्यालय प्रारम्भ होने पर बधाई

डी.ए.वी. विश्वविद्यालय की स्थापना पर हार्दिक शुभकामनाऐं। महात्मा हंसराज जी की 150वीं जयन्ति पर यह शुभकार्य समाप्त हुआ। प्रत्येक आर्य परिवार बधाई का पात्र है।

यह सर्वविदित है कि भारतीय परिवेश में अब शिक्षा का प्रसार तो दिन--पति दिन पगति कर रहा है। परन्तु दीक्षा का भाव महसूस हो रहा है। शिक्षा और दीक्षा के अभाव मे समाज दिशाहीन होता जा रहा है। सांस्कृतिक परिवारिक आदर्श घूमिल होते जा रहे हैं। जिस कारण आर्य समाज की प्रत्येक इकाई मे विवाद उत्पन्न हो गये हैं।

हमारा आग्रह है कि जिस प्रकार डी.ए.वी. शिक्षा सस्था एक सूत्र के कार्य कर रही हैं ठीक उसी प्रकार आर्य पद्वति की अन्य संस्थायें जैसे गुरुकुल भी एक सूत्र में कार्य करें।

यह सर्वविदित है कि विदेशी शिक्षा संस्थायें तेजी से विकसित होती है जो हमारी संस्कृति के लिये घातक है।

विश्वास है कि देश के समस्त आर्य विद्वान एक मंत्र और एक मंच से संगठित होकर देश को अपभ्रष्ट होने से बचायेंगे।

कृष्णा मोहन गोयल
अमरोहा 244221

****

एक के अनेक नाम

"सोऽर्यमा स वरुणः स रूद्रः स महादेवः।
रश्ममिनभ आमृतं ,महेन्द्र एत्यावृतः।।"
(अथर्व 13-4-4)

देखो 'स-' आदित्य अरुणिमा आभा से सजधज के।
प्राची से धीरे--धीरे उठ, ऊर्ध्वारोहण करके।।

सबको नवस्फूर्ति, चेतना, ऊर्जा देते जाते।
भुवन भास्कर, भास्मान कर नभ को भव्य बनाते।।

अंधकार, मालिन्य, रोग कृमियों का नियमन करते।
हुए 'अर्यमा' बनके इन अरियों का शोधन करते।।

वे ही नभ मण्डल में भ्रमते ग्रह उपग्रह पिण्डों को।
करके वरण 'वरुण' हो द्युति देते, तम हर सबही को।।

रूलारूला कर रोगादि को जब वे मार भगाते।
तो वे रोद्र को धारण करके 'रूद्र' कहाते।।

आदि देव वे महादेव हैं द्युति प्रकाश के धारक।
सौर जगत् के देवों में सर्वाधिक प्रभा प्रसारक।।

दिव्य ज्योति, ऊर्जा, प्राणों के स्त्रोत 'महेन्द्र' कहाते।
अपनी ज्योति रश्मियों से नभ में प्रकाश फैलाते।।

चले आ रहे वे विशाल तेजोराशि से आवृत।
परमेश्वर्यों के दाता रवि रश्मि रंथी प्रभारत।।

हम उनसे ज्योती, ऊर्जा अरु प्राण, शक्ति नित पाऐं।
अपने जीवन को परमारथ रत रख भव्य बनाऐं।।

दयाशंकर गोयल
1554 डी. सुदामा नगर इंदौर
पिन- 452009 (म.प्र.)

मत्स्य भोजी ने ठुकराया जब मत्स्याहार

आज यह कलम क्यों चल पड़ी। या यों कि मैंने अखबार में ग्राम नदरोई (अलीगढ़) का चौंकाने वाला एक सचमाचार पढ़ा। एक युवक ने मत्स्य-पालन के लिए गाँव मे पोखर का पाँच वर्ष का आवंटन कराया उसने मछलियों के लिए निश्चित चारा डालने के बजाय मृत पशुओ को पोखर में छोड़ना प्रारम्भ कर दिया। ग्रामीण तब सचेत हुए, जब पोखर से उठने वाली दुर्गन्ध उनका उठना-बैठना दूभर कर दिया। उन्होंने अपनी तहसील के उप जिलाधिकारी से इसकी शिकायत की।

अर्द्धशती पूर्व ऐसी ही एक घटना तब घटित हुई थी, जब मैंने इन्टर कॉलेज के शिक्षक के पद को छोड़कर उ. प्र. कृषि विभाग के राजकीय पद का दायित्व संभाला था। उस समय हमारे राज्य स्तरीय कार्यालयाध्यक्ष माननीय श्री एन. के. दास थे। वे अति दयालु एवं सहायकों के संरक्षक थे। मैंने अपने लेखन में जहाँ कहीं भी उनका उल्लेख किया है, तो उनके नाम से पहले देवता-स्वरूप विशेषण अवश्य अंकित किया है। वे वास्तव में देवता थे। उनका जन्म उत्कल राज्य में हुआ था। बंगाल एवं उत्कल आदि प्रदेशों में 'मत्स्याहार का आम प्रचलन है। एक बार वे महोदय क्षेत्रीय भ्रमण पर थे। उन्होंने नदी के किनारे एक मानव के शव को चिपटी हुई मछलियों द्वारा खाते देख लिया। उनका मन घृणा से भर गया। उन्हें समझते देर नहीं लगी कि मत्स्य भोजी मछली के माध्यम से मानव-पशुओं की सड़ी गली मृतदेह का मांस ही खा जाते हैं। और, उन्होंने उस दिन मछली न खाने की प्रतिज्ञा की। उसका सपरिवार आजीवन निर्वाह किया।

बाजार से कोई क्या कुछ लाता और खाता है। जब उसकी अन्तर्निहत वास्तविकता को देखता है तो उसकी आँखें खुली की खुली रह जाती हैं।

देवनारायण भारद्वाज
'वरेण्यन' अवन्तिका (प्रथम)
रामघाट मार्ग,
अलीगढ 202001 (उ.प्र.)

****

इमामों को तो वेतन दे रही है सरकार

दिल्ली में 300 के लगभग आर्य समाज मन्दिर हैं। प्रत्येक आर्य समाज में पुरोहित की व्यवस्था करनी पड़ती है, जो आर्य समाज मन्दिरों में प्रतिदिन सत्संग के अवसर पर हवन करवाते तथा वेद उपदेश करते हैं। आज कल महगाई बहुत हो गई है, आर्य समाजों के पास इतना धन नहीं है जो इनको गुजारे लायक वेतन दे सके। अधिकतर पुरोहित तो विवाहित हैं इस लिये उनको बड़ी कठनाई का सामना करना पड़ता है। यज्ञादि कार्य घरों में कराने पर भी पर्याप्त दक्षिणा नहीं मिलती।

दिल्ली सरकार मसजिद के इमामो को तो वेतन दे रही है परन्तु आर्य समाज के पुरोहितों का जीवन कठिनाई से बीत रहा है। इसलिये आर्य प्रतिनिधि सभाओं को सरकार से वेतन दिये जाने का अनुरोध करना चाहिये।

अश्विनी कुमार पाठक
वी4/256 सी
केशव पुरम दिल्ली

****

☞ पृष्ठ 7 का शेष

मांसाहार व मदिरापान ...

ईश्वरीय व्यवस्था प्रकृति के सन्तुलन या पर्यावरण की सुरक्षा की हो सकती है। इसके अतिरिक्त भोजन का संबंध हमारी आयु से भी है। मांसाहारी पशुओं की आयु शाकाहारी पशुओं से प्रायः कम होती है। अतः इसी उदाहरण के अनुसार मांसाहारी मनुष्यों की आयु शाकाहारी मनुष्यों से कम होती है। कई बार कुछ ऐसे उदाहरण भी सामने आ सकत हैं कि जहां मांसाहारी मनुष्यों की आयु अधिक हो तो वहां कारण मांसाहार नहीं अपितु उन मनुष्यों का नियमित जीवन, व्यायाम, समय पर भोजन, पुरुषार्थ, जल्दी सोना व जागना आदि जैसे कारण हो सकते हैं। इसी प्रकार घूमपान का उदाहरण लेकर जान सकते हैं कि इससे कैंसर सहित अनेक रोग होते हैं और आयु घटती है जिसकी पुष्टि आधुनिक चिकित्सा विज्ञान ने भी की है तथापि देशी-विदेशी पढ़े लिखे समझदार व वैद्य-डाक्टर आदि भी आदत पड़ जाने के कारण सिग्रेट का सेवन करते हैं।

धर्म की दृष्टि से भी मांसाहार अनुचित है। ईश्वर ने मनुष्यों व पशुओं आदि को अपने पूर्व जन्म के कर्मों के फल भोगने के लिए यह जन्म दिया है। हमें अपने कर्मों का फल भोगते हुए नाना प्रकार से ऐसे कर्म करने चाहिये जिससे हमारा वर्तमान व भावी जीवन सुखी व समृद्ध हो। इसके लिए हमें स्वास्थ्यकर भोजन, जो केवल शाकाहारी ही हो सकता है तथा जिसमें हम अन्न की रोटी, दाल, शाक-शब्जी, गोदुग्ध, दही, घृत, मक्खन, मट्ठा, मावा, हरी साक-सब्जी-तरकारी, बादाम, काजू, छुआरे, मौसमी फल, आम, सन्तरा, सेब, अमरूद, अनार, नारियल, अनानास, जामुन, नमक, मिर्च व मसाले आदि ले सकते हैं। इस प्रकार का भोजन करने से शरीर स्वस्थ व दीर्घायु होता है और यही भोजन करना चहिए। **मांसाहार करके हम पशुओं के प्रति हिंसा करते हैं जिससे हमारा व्यवहार मानवीय न रहकर पाशविक व इससे भी निम्न हो जाता है। इससे हमारे पारिवारिक व सामाजिक जीवन में भी विसंगतियां उत्पन्न होती हैं। कर्मो का फल प्रत्येक मनुष्य को भोगना ही पड़ता है। यह विज्ञान की कसौटी पर पूर्णतः सत्य वैदिक धर्म के सिद्धान्तों व मान्यताओं से भी पुष्ट है, अतः मांसाहार सर्वथा एवं हर परिस्थिति में त्याज्य है।** हमने प्रवचनों में एक ऐसी मांसाहारी महिला का उदाहरण सुना है जिसने आजादी से पूर्व के दिनों में बंगाल में आये अकाल में कई दिनों तक भोजन न मिलने पर अपने शिशु को ही मारकर खा लिया था। यह सब इसलिये संभव हुआ था कि उस महिला में मांस भक्षण के संस्कार थे और वह भूख सहन न कर सकी। ऐसे उदाहरणों को भी मांसाहारियों को सामने रखना चाहिये। वार्तालाप में हमारे नेता मित्र ने कहा कि पशु योनि में सभी पशु पक्षी अपने कर्मों के फल भोग रहे हैं। उन्हें मार देने से उनका भोग समाप्त हो जाता है। यह उन पशुओं के प्रति मानव का उपकार है। यह उत्तर हमारे मित्र की कर्म-फल सिद्धान्त से अनभिज्ञयता को सिद्ध करता है। कर्मफल के सिद्धान्त के अनुसार उस पशु को बचे हुए अपने कर्मों के फल पुनः पशु जन्म लेकर या अन्य योनियों में भोगने पडें परन्तु मांसाहारी द्वारा असमय में मृत्यु का जो दुःख उस पशु ने झेला है, उसके बदले में परमात्मा की ओर से अनावश्यक दुःख भोगने के लिए उस भोगे गये मृत्यु दुःख के बराबर भावी मनुष्य या पशु जीवन में सुख मिलेगा। यहां यह ज्ञातव्य है कि जब जीवात्मा के शुभ व अशुभ कर्म आधे से अधिक अच्छे हों तो मनुष्य का जन्म मिलता है और यदि कम हों तो पशु, पक्षी, कीट, पतंग आदि नाना योनियां कर्मानुसार मिलती हैं। **जिन मनुष्यों के लिए मांस काटा जाता है या पशु हत्या की जाती है उसका फल, पशु की हत्या की अनुमति देने वाले, मांस काटने वाले, पकाने वाले, परोसने वाले, क्रय-विक्रय करने वाले व खाने वाले सबको उनके कर्मों के अनुरूप ईश्वर की व्यवस्था से कालान्तर में मिलता है, यह ध्रुव सत्य है।**

मांस को काटने वाले से खाने वाला अधिक दोषी होता है। काटने वाला प्रायः अशिक्षित, अज्ञानी व मूर्ख होता है। उससे बात करें तो उसे धर्म-कर्म की बातें न ज्ञात होती हैं और न ही सिखाई जा सकती हैं। दूसरी और मांसाहारियों का जीवन स्तर, शिक्षास्तर, समाजिकस्तर अधिक होता है। वे चाहें तो अपनी बुद्धि से विवेक से, मांसाहार, उचित है या नहीं, जान सकते हैं परन्तु रसना इन्द्रिय के मोह व कुसंस्कार के कारण वे अपनी बुद्धि पर ताले लगाये रहते हैं। ईश्वर सर्वव्यापक व सर्वान्तर्यामी है। वह मांस-भक्षक मनुष्य के हृदय के भावों को जानता है। यह भी जानता है कि यह बुद्धि का प्रयोग न कर केवल स्वाद व कुसंस्कार के कारण ऐसा कर रहा है। जिस प्रकार विद्यालयीय परीक्षा में बुद्धि का प्रयोग न कर भावनाओं के वशीभूत होकर अध्ययन में उपेक्षा बरतने पर हम अनुत्तीर्ण हो जाते हैं, इसी प्रकार ऐसे लोग निरपराध पशुओं को पीड़ा देने, समाज को हानि पहुंचाने व ईश्वराज्ञा भंग करने के अपराध की परमात्मा द्वारा कठोर सजा से बच नहीं सकते। अतः किसी भी स्थिति में मांसाहार उचित नहीं है।

अब हम पुनर्जन्म की चर्चा कर लेख को विराम देंगे। ऊपर हमारे एक मित्र ने यह कहा था कि किसने देखा कि पुनर्जन्म होता है। पुनर्जन्म एक ध्रुव सत्य है। अविवेकी लोगों को इसका ज्ञान नहीं है। यह तो कोई सत्यान्वेषी व धर्मधुरन्धर महात्मा ही जान सकता है व दूसरों को बता व समझा सकता है। एक अकाट्य प्रमाण हम यहां देते हैं। आत्मा अविनाशी, अजन्मा, अमर, अनन्त तत्व है। इसके कर्मों का फल भोगने, इसे सुख देने, मोक्ष प्राप्ति करने हेतु परमात्मा ने यह संसार बनाया व जीवों के कर्मों के अनुसार उनके देह व शरीर बनाये हैं। यदि आत्मा अविनाशी न होता तो इस जीवात्मा को कौन, कैसे व किससे बनाता? इसी प्रकार परमात्मा ने न तो स्वयं को बनाया और न उसे कोई बना सकता है। वह स्वयंभू है। यदि कोई परमात्मा को बनाता तो वह परमात्मा से बड़ा परमात्मा होता। यह असंभव है अतः परमात्मा को किसी ने नहीं बनाया। प्रत्येक वस्तु कारण से बनती है। निमित्त व उपादान कारण प्रमुख रूप से किसी वस्तु का निर्माण करते हैं। सृष्टि में परमात्मा का न तो कोई निमित्त कारण मौजूद है और न ही उपादान कारण। इसी प्रकार जीवात्मा का भी न को कोई निमित्त कारण है और न ही उपादान कारण। ये दोनों सदा से हैं, जिनकी कभी उत्पत्ति नहीं हुई है। इसी कारण इन दोनों को अजन्मा, अनादि व नित्य कहा जाता है। जब ये दोनों सदा से हैं, और सृष्टि का उपादान कारण प्रकृति भी सदा से है, तो परमात्मा प्रकृति से सृष्टि का निर्माण करके जीवात्माओं को मोक्ष मिलने पर्यन्त इनके कर्मों का फल देता आ रहा है और देता रहेगा। **इसी कारण मृत्यु के पश्चात अवशिष्ट शुभ व अशुभ कार्मों का फल भोगने के लिए परमात्मा उन मृतक हुए जीवात्माओं को कर्मों के फल के रूप में नया जन्म या शरीर देता है। यही पुनर्जन्म है।** बच्चा जन्म के बाद मां का दूध पीता है, यह दूध पीने का संस्कार उसे पूर्व जन्मों से ही प्राप्त है, अन्यथा बिना सिखाये वह यह क्रिया कदापि नहीं कर सकता था। वह सोते-सोते हंसता व रोता है, यह भी उसे पूर्व जन्मों के यदा-कदा स्वप्न आने के कारण होता है। एक बच्चा गरीब माता-पिता व एक अमीर माता-पिता के यहां जन्म लेता है। गरीब के घर जन्मे बच्चे को खाने पीने व परवरिश की कोई सुविधा नहीं है जबकि अमीर के लिए नौकर-चाकर व डॉक्टर हर समय उपलब्ध होते हैं। इसका कारण भी पूर्व जन्मों के कर्म व प्रारब्ध हैं। पुराना जन्म याद इसलिए नहीं रहता कि दो जन्मों के बीच एक मृत्यु आ फंसती है। पूर्व जन्म का शरीर व शारीरिक इन्द्रियों को जला कर नष्ट कर दिया जाता है। नये शरीर में सब पदार्थ व शरीर के सेल्स व कोष नये होने के कारण भी उसे पूर्व जन्म याद नहीं रहता। हम इसी जन्म की बात करें तो हम हर पल, हर क्षण, साथ-साथ भूलते रहते हैं। हम जो बोलते हैं उसे कुछ समय बाद ही उसी प्रकार बिना शब्दों व वाक्यों को किंचित बदले दोहरा नहीं सकते। हमने सुबह क्या खाया, कल, परसों व उससे पूर्व के दिनों में, कौन-कौन से रंग वाले वस्त्र पहने, नहीं बता सकते। यह मनुष्य की कुछ बातों को साथ-साथ भूलने की प्रवृत्ति के कारण होता है। **अतः पुनर्जन्म की स्मृति का न होना इस बात का प्रमाण नहीं है कि पुनर्जन्म था ही नहीं।** पुनर्जन्म व भावी जन्म पर उठने वाली सभी शंकाओं का निराकरण धर्मात्मा व विवेकी लोग करते हैं। आवश्यकता श्रद्धापूर्वक उनका सान्निध्य प्राप्त करने की है। परन्तु इसके लिए किसी के पास समय नहीं है। **यह सिद्धान्त है कि जिस विषय का जिस व्यक्ति को ज्ञान न हो उसे उस विषय में चुप रहना चाहिये अथवा जिज्ञासा या शंका करनी चाहिये परन्तु व्यवहार में देखते हैं कि अज्ञानी लोग जिज्ञासा व शंका करने के स्थान पर अपना एक पंक्ति का असत्य निर्णय दे देते हैं।** यह स्थिति उचित व सराहनीय नहीं है। हम समझते हैं कि लेख का विषय स्पष्ट हो गया है। यदि इस लेख से किसी पाठक को कुछ भी लाभ होता है तो हम अपना परिश्रम सफल समझेंगे।

चुक्खूवाला-2 देहरादून

www.thearyasamaj.org

Delhi P al R. No. D.L. (ND)-11/6066/2012-14
अग्रिम अदायगी के बिना भेजने का लाइसैंस नं. U(C)-103/2012-14
POSTED AT N.D.P.S.O. ON 14-15 /08/2013
रजिस्ट्रेशन नं. आर० एन० आई० 39/57

डी.ए.वी. पिहोवा में चरित्र निर्माण शिविर हुआ सम्पन्न

डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल पिहोवा (कुरुक्षेत्र) में पांच दिवसीय युवा चरित्र निर्माण शिविर का आयोजन किया गया। इस शिविर मे 89 विद्यार्थियों ने भाग लिया जो भिन्न–भिन्न डी.ए.वी. स्कूलों से आए हुए थे। इस अवसर पर नैतिक शिक्षा तथा चरित्र निर्माण एवं आर्य समाज के आधार के विषय में बोलने के लिए डा. राजेन्द्र अलंकार प्रोफैसर कुरुक्षेत्र यूनिवर्सिटी, को विशेष तौर से बुलाया गया। उन्होंने विद्यार्थियों को अच्छा आचरण, अच्छा व्यवहार व नैतिक मूल्यों जैसे कई गुणों पर बड़े विस्तार से बताया। डा. ए. के. सिंह चेयरमैन कम्पयूटर साईंस NIT कुरुक्षेत्र ने कालेजों में दाखिला लेने के बच्चों को इन्जीनियरिंग के विभिन्न लिए विद्यार्थियों को भरपूर ज्ञान

प्रौजैक्टर के माध्यम से दिया। अच्छी सेहत बनाने की प्रेरणा देने के लिए राष्ट्रीय और अन्तराष्ट्रीय स्तर के स्वर्ण पदक विजेता श्री जितेन्द ढिल्लन से रूबरू करवाया गया था। आज इस पांच दिवसीय शिविर का समापन हुआ जिसमें मुख्य अतिथि अतिरिक्त जिला एवं सैशन जज श्री रजनीश बसल यमुनानगर रहे जिन्होंने बच्चों को संबोधित करते हुए डी.ए.वी. संस्था में लगने वाले चरित्र निर्माण शिविर को जोरदार तरीके से सराहना की। उन्होंने विद्यार्थियो को पुरस्कार वितरण किये तथा डा. कामदेव झा मैनेजर ने अपने विचार रखे।

डी.ए.वी. शोघी (हि.प्र.) में लगा चरित्र निर्माण शिविर

Delivery - 110001
31 AUG 2013
नई दिल्ली
Delhi

हिमाचल प्रदेश के डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल शाघी में तीन दिवसीय चरित्र निर्माण शिविर का आयोजन किया गया। इसमें विद्यालय के लगभग 40 विद्यार्थियो व 15 अध्यापकों ने भाग लिया। शिविर में प्रतिदिन हवन–यज्ञ से दिनचर्या की शुरूआत के साथ अन्य गतिविधियाँ जैसे शारीरिक भ्रमण, क्रीड़ा व सांस्कृतिक कार्यक्रम भी आयोजित किए गए। शिविर

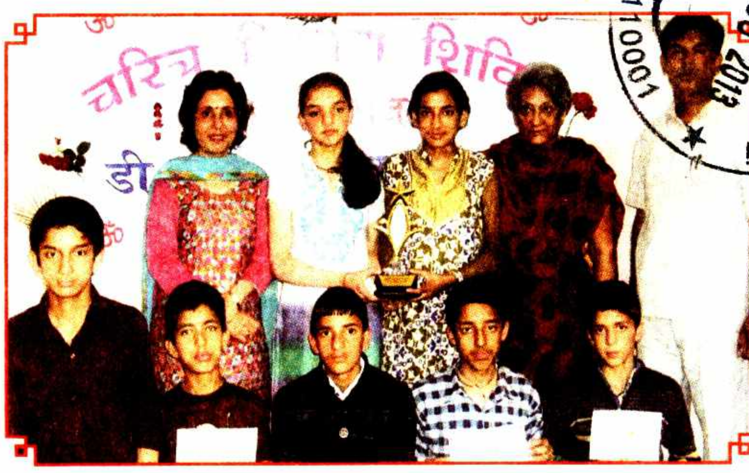

के समापन समारोह में हिमाचल प्रदेश की जोन–I की क्षेत्रीय निदेशिका श्रीमति पी. सोफत ने सभी प्रतिभागियों व अध्यापकों को ऐसी गतिविधियाँ करने के लिए प्रेरित किया। विद्यालय के प्राचार्य श्री लखवीर सिंह ने सभी अतिथि गणों, अभिभावकों व बच्चों का धन्यवाद किया। उन्होंने बताया कि इस शिविर में सभी प्रतिभागियो ने हर प्रकार के प्रकार के नशे से दूर रहने का प्रण भी लिया।

जियालाल शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान, अजमेर ने 50 वर्ष किये पूरे

जियालाल शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान, अजमेर रा. की स्थापना के 50 वर्ष पूरे हो बये। इस अवसर पर समाज उपयोगी कार्यशाला का आरम्भ हवन द्वारा किया गया। शिविर में उत्कृष्ट सामाजिक भागीदारी निभाने हेतु रेडक्रास सोसायटी के माध्यम से विभिन्न जानकारियाँ कर्नल उपाध्याय द्वारा प्रदान की गईं तथा प्राथमिक उपचार की परीक्षा का भी आयोजन किया गया। शिविर में मेहन्दी, रंगोली तथा छात्र–छात्राओं द्वारा श्रमदान भी किया गया। सोसायटी फॉर अवेयरनेस नॉलेज स्किल्ज् एण्ड हैल्थ अवेयरनेस द्वारा कानून की

जानकारी प्रदान की गई।

शिविर का समापन समारोह प्राचार्या डॉ. इन्दु तनेजा की अध्यक्षता में किया गया। उक्त शिविर में प्रतियोगिताओं के विजेताओं को पुरस्कार वितरण किया गया तथा इस अवसर पर छात्र–छात्राओं द्वारा रंगारंग कार्यक्रम की प्रस्तुति दी जिसमें स्वागत गीत, राजस्थानी नृत्य एवं कविताएँ शामिल थीं।

प्राचार्या डॉ. इन्दु तनेजा द्वारा सभी का आभार प्रकट करते हुये अतिथियों को धन्यवाद प्रेषित किया गया।

मुद्रक व प्रकाशक – **श्री प्रबोध महाजन,** सभा मंत्री द्वारा **मदन गोयल** के प्रबंध में **अरावली प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स (प्रा.) लि.,** डब्ल्यू–30, ओखला, फेस–II, नई दिल्ली–110020 (दूरभाष : 26388830–32) से मुद्रित कार्यालय **'आर्य जगत्'** आर्यसमाज भवन, मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली–110001 से प्रकाशित। स्वामित्व – आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली–110001 (दूरभाष : 23362110, 23360059) सम्पादक – **श्री पूनम सूरी**